सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म
का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 52; अंक : 5
अगस्त 2019

सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति।।

—चाणक्य

जब तक शरीर निरोग व स्वस्थ है और मृत्यु दूर है तब तक अपने आत्म कल्याण का उपाय कर लेना चाहिए। क्योंकि मृत्यु हो जाने पर कोई कुछ नहीं कर सकता।

• • •

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।

—श्रीमद्भगवद् गीता 6/6

जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का तो वह स्वयं ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिए वह स्वयं ही शत्रु जैसा व्यवहार करता है।

• • •

शतं वो ऽम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधाशत क्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदंकृत।।

—यजुर्वेद

मनुष्यों को चाहिये कि वे उचित पथ्य, आहार और नियमों का विधिवत् पालन कर शरीर को रोग रहित रखें अर्थात् स्वास्थ्य की रक्षा करें, क्योंकि स्वस्थ रहे बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

• • •

नैकः सुखी न सर्वत्र विश्वस्तो न च शंकितः।
नोद्यमे विरमेत्त्वयपि हेलावीर्ष्यात्फले न तु।।

—भावप्रकाश 5/258

अकेले सुख का भोग न करके दूसरे को सुख भोग कराते हुए स्वयं सुख भोगना चाहिए। सब के ऊपर विश्वास या संदेह न करके सोच समझकर उचित व्यवहार करना चाहिए। उद्योग करना न छोड़े और दूसरे की उन्नति और सम्पन्नता से ईर्ष्या न करें।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 52 अगस्त 2019 अंक : 05

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/4)

जो रुद्र–इन्द्रादि देवताओं की उत्पत्ति का हेतु और वृद्धि का हेतु है; तथा जो सबका अधिपति और महान ज्ञानी–सर्वज्ञ है, जिसने पहले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था, वह परमदेव परमेश्वर हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	श्रीमद्भागवत में योग–परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह	10
4.	चित्तनिरोध के उपाय – श्री वैद्य रामधन शर्मा शास्त्री	13
5.	जीवन का लक्ष्य – धर्माचार्य दण्डी स्वामी कोमलदेव आश्रम	19
6.	सुर–दुर्लभ मानव जन्म – दिनेश चन्द्र शर्मा	22
7.	आपका आसन – श्री विष्णुप्रसाद 'व्यास'	25
8.	जीवनदाता से मिलती है आत्मा	33
9.	पत्रं–पुष्पं–फलं–तोयम् – आयुर्वेदीय विधिविधान	34
10.	सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर – श्री विद्यानन्द सरस्वती	36
11.	जादूगर सम्राट शंकर – जादू कला सम्मोहन व दृष्टि बन्ध	38
12.	श्री गुरु पूर्णिमा एवं रुद्र महायज्ञ धूमधाम से सम्पन्न	39
13.	योग–आसन	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

क्लेश-निवृत्ति की उपयोगी साधना

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

हमने दूसरे यम सत्य की विवेचना विस्तार से करते हुए बताया था कि जो लोग मनसा वाचा कर्मणा सत्य का पालन करते हैं बहुत थोड़े समय में ही उनकी वाणी में सत्य आ जाती है एवं क्रियाफल होने लगता है। पंजाब जिला करनाल में एक महात्मा एक जगह पर वास करते थे, उन्होंने अन्य अपनी सभी प्रकार की साधनाओं को करते हुए भी सत्य पालन को अपना ध्येय बनाया था। उनकी यह साधना थी कि मनसा, वाचा, कर्मणा जो भी क्रिया करते थे वह सत्य ही करते थे। वे अत्यन्त ही मृदुभाषी थे। उनकी वर्षों की साधना के फलस्वरूप उनके जीवन में सत्य चमक उठा था। वे जो भी किसी को कह दिया करते थे, सत्यदेव भगवान् की कृपा से वह पूरा होता था। उनके मन से किया हुआ कोई भी दृढ़ निश्चय विफल नहीं होता था। योगीराज भगवान् पतंजलि के अनुसार उनकी वाणी क्रिया फल वाली हो गई थी। वे स्वयं इस बात को मानते थे कि मेरा जीवन सत्यदेव की आराधना से ही पूर्ण निर्भय व अन्य सभी विघ्न बाधाओं से रहित है। सत्य पूर्ण ब्रह्म है और उसकी आराधना स्वयं परब्रह्म की आराधना है तथा सब प्रकार से ओज और तेज को बढ़ाने वाली है। अतः कल्याण व निःश्रेयस की अभिलाषा वाले व्यक्तियों को भगवान पतंजलि देव के बतलाये हुए दूसरे यम सत्य को अपने जीवन में पूरी तरह अपनाने का प्रयत्न करना चाहिए। सत्य ही सब कल्याणों का मूल है।

अस्तेय तीसरा यम है।

'अस्तेय धर्म' भी अहिंसा भाव की परि पुष्टि के लिये है—अर्थात् दूसरे के धन को चोरी से, बल से किसी भी प्रकार से अपहरण न करना अस्तेय है।

अन्यदीये तृणे रत्ने, काञ्चने मौक्ति केऽपि च।
मनसा विनिवृत्तिर्या, तदस्तेयं विदुर्बुधाः॥

अर्थात् किसी दूसरे के तृण, रत्न या मुक्ता आदि के चुराने में मन की वृत्ति न होने को अस्तेय कहा गया है। जिस व्यक्ति की अस्तेय में पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है उसको सर्व रत्न उपस्थित होने लगते हैं। किन्तु उसे उनकी कामनायें नहीं रहतीं।

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्व रत्नोपस्थानम्।

—यो. सू. 2–37

अर्थात् अस्तेय की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने पर योगी को सब प्रकार से सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। रत्न आदि स्वयं ही प्राप्त होने लगते हैं। इसके बाद—

ब्रह्मचर्य चौथा यम है।

'ब्रह्मचर्य' की महिमा से हमारे शास्त्र ओत–प्रोत हैं। किन्तु आजकल के समाज में दुर्व्यसनों के अधिक मात्रा में बढ़ जाने के कारण ब्रह्मचर्य–जीवन प्रायः लुप्त सा ही है। वीर्य धारण करने को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। वीर्य को हमारे शास्त्रों में ब्रह्मरूप से कथन किया गया है। जो वीर्य को धारण करे वह ब्रह्मचारी कहलाता है। वीर्य हमारे शरीर में सातवीं धातु है। उसका स्वरूप हमारे शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है—

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बल पुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भ बीजं वपुः सारो जीवनाश्रय उत्तमः।।

मनुष्य जब अन्न सेवन करता है तो उससे रस बनता है, रस के बाद रक्त, इसके बाद मांस, मांस के बाद मेद, मेद के बाद हड्डी (अस्थि), के बाद मज्जा, मज्जा से वीर्य बनता है और वीर्य से ओज उत्पत्ति होती है, जो मनुष्य को देदीप्यमान रखता है। वीर्य सम्पूर्ण शरीर का आधार, जीवन का आश्रय और परम पुष्टिकर है। जिस प्रकार दूध में घी और ईख के रस में गुड़ व्यापक रहता है, उसी प्रकार से वीर्य सारे शरीर में व्यापक रहता है। इसी से मन और बुद्धि का पूर्ण विकास होता है। यही सर्व सिद्धियों का मूल है। शिव–संहिता में भगवान् शंकर ने ऊँचे शब्दों में आज्ञा की है—

मूलम्—मरणं बिन्दु पातेन
जीवनं बिन्दुधारणे।
तस्मादति प्रयत्नेन
कुरुते बिंदु धारणम्।।
मूलम्—जायते म्रियते
लोके बिन्दुना नात्र संशयः।
एतज्ज्ञात्वा सदा योगी
बिन्दु धारणमाचरेत्।।
मूलम—सिद्धे बिन्दौ महायत्ने
किं न सिध्यति भूतले।

यस्य प्रसादान्महिमा

मसाप्येतादृशो भवेत्।।

अर्थात् बिन्दु के पतन से मरण और बिन्दु के धारण से जीवन होता है। प्राणी का जन्म और मरण बिन्दु से ही होता है। इसलिए योगी को प्रयत्न करके बिन्दु धारण करना चाहिए। यत्नपूर्वक बिन्दु जय कर लेने पर संसार में कोई भी ऐसा कार्य नहीं जो सिद्ध न किया जा सके। भगवान कहते हैं कि मेरा जो कुछ प्रभाव संसार में दिखलाई देता है वह केवल वीर्य–धारण से ही है। ब्रह्मचर्य के नियम बहुत बड़े–बड़े हैं। शास्त्र–विधि से ब्रह्मचारियों की दो संज्ञाएँ रखी गयी हैं–

(1) नैष्ठिक (2) उपकुर्वाण

नैष्ठिक–नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह कहलाता है जो जीवन पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। उदाहरणार्थ भीष्म पितामह, शंकराचार्य, आर्य समाज प्रवर्तक स्वामी दयानन्द हुये हैं।

उपकुर्वाण–ब्रह्मचारी वह कहलाता है जो समय की अवधि तक ब्रह्मचर्य आश्रम का पूर्णरूप से पालन करके गृहस्थ में प्रवेश कर जाये। किन्तु किसी भी संज्ञा का कोई भी ब्रह्मचारी हो, ब्रह्मचर्य अवस्था में मैथुन–त्याग परमावश्यक है।

कर्मणा मनसा वाचा

सर्वावस्थासु सर्वदा।

सर्वथा मैथुन त्यागो

ब्रह्मचर्य प्रचक्षते।।

जो सब अवस्था में मन, वाणी–कर्म से सर्वथा मैथुन का त्याग करता है, वही ब्रह्मचारी कहलाने का अधिकारी है।

मनुस्मृति आदि में ब्रह्मचर्य आश्रम के लिए बहुत बड़े–बड़े नियम लिखे हैं। लेख के बढ़ जाने के भय से उन सबका यहाँ वर्णन करना आवश्यक नहीं समझा गया। किन्तु इस विषय में सभी शास्त्रों का एकमत है कि मन से भी ब्रह्मचारी को विषयों का चिन्तन नहीं करना चाहिए। क्योंकि–

ध्यायतो विषयान्पुंसः

सङ्गस्तेषूपजायते।

सगांत्संजायते कामः

कामात्क्रोधोऽभिजायते।।

क्रोधाद्भवति संमोहः

संमोहात्स्मृति विभ्रमः।

स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो
बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

–गीता 2–62–63

अर्थात् विषयों का चिन्तन करने से मनुष्य को संग और संग से काम, काम से क्रोध और क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिभ्रंश और स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से सर्वनाश हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार जो मनुष्य चिन्तन मात्र से विषयों का स्मरण नहीं करता, वही ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन कर सकता है, अन्यथा नहीं। जिसने इस ब्रह्मचर्य रूप महाशक्ति को धारण कर लिया है, उसने संसार को जीत लिया है। ब्रह्मचारी में सिद्धों की तरह शक्तिपात करने की योग्यता आ जाती है। भगवान् पतंजलि ने ब्रह्मचर्य धारण का फल एक सूत्र में बतलाया है–

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

–योग सूत्र 2–38

ब्रह्मचर्य की पूर्ण प्रतिष्ठा में पूर्ण सामर्थ्य–लाभ होता है। इसी सूत्र का भाष्य करते हुये भगवान व्यासदेव जी कहते हैं–

यस्य लाभाद् प्रतिधान गुणानुत्कर्षो यतिः सिद्धश्च विनयेषु ज्ञानमा धातु समर्थो भवतीति।

अर्थात्! इस ब्रह्मचर्य के धारण करने से अनुपम गुण बढ़ते हैं और पूर्ण ब्रह्मचर्य सिद्ध हो जाने पर ब्रह्मचारी अपने शिष्यों में शक्ति संचार करके ज्ञान धारण करा सकता है।

अपरिग्रह पाँचवां यम है।

परिग्रह का न होना अपरिग्रह कहलाता है। संसार के सब विषयों में और अपने शरीर में स्वत्व बुद्धि का नाश हो जाने पर प्राणी–धर्मों से अपने आपको पृथक् देखता है और उसको अपने पूर्व संस्कार स्मरण होने लगते हैं। मैं कौन था? क्या था? कैसा था? क्यों था? आगे क्या होऊँगा? इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ मन में घूमने लगती हैं। ऐसी भावना से शरीर धर्म में भी उपरति हो जाने के बाद उसको जन्म जन्मान्तर की कथाओं का स्मरण होने लगता है।

भगवान पतंजलि लिखते हैं–

अपरिग्रह स्थैर्ये जन्मकथन्ता सम्बोधः।

–योग सूत्र 2–39

अर्थात् पूर्णतः अपरिग्रह की स्थिरता हो जाने के बाद जन्म–जन्मान्तरों की कथाओं का संबोध होता है। यह सब यमों की सिद्धियाँ हैं।

सम्पादकीय—

योग से ही अन्तर्जगत का ज्ञान

—आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

दुनिया दो प्रकार की है। एक है बाहरी दुनिया तथा दूसरी है भीतर की दुनिया जिसे आध्यात्म या रूहानी दुनिया कहते है। सामान्य व्यक्ति को बाह्य जगत का ही ज्ञान होता है अन्तर्जगत का नहीं। दुनिया में जन्म लेने के पश्चात् मनुष्य दूसरे लोगों के सम्पर्क में आता है और व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार से उसे ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा बाहर की दुनिया का ज्ञान होता है। इन्द्रियों को ज्ञान प्राप्ति का साधन होने के कारण 'करण' भी कहते हैं। भीतर का ज्ञान हमें अन्तःकरण से प्राप्त होता है। जिसके अन्तर्गत मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार आते हैं। योग शास्त्र में अन्तःकरण चतुष्टय के लिये चित्त शब्द का प्रयोग हुआ है। चित्त सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के भेद से तीन प्रकार का कहा जाता है। चित्त में ही ये सतोगुण आदि तीन प्रकार के गुण रहते हैं जो अपने स्वभाव को दर्शाते रहते हैं। जब तक चित्त का अस्तित्व रहता है तब तक ये गुण प्रभावी रहते हैं। चित्त के अपने मूल कारण प्रकृति में लीन हो जाने पर चित्त जन्य वृत्तियाँ भी समाप्त हो जाती है यही योग का उद्देश्य है। 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' चित्त वृत्तियों का निरोध या रोक देना ही योग है। इसी से आत्मा त्रिगुण के प्रभाव से शून्य होकर अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

साधक को समाधि के दृढ़ अभ्यास से स्थितप्रज्ञता की ओर बढ़ना चाहिए। इस प्रज्ञा के दृढ़ होने पर साधक स्थिर चित्त हो जाता है। 'गीता में भगवान कहते हैं—**वीतराग भय क्रोधः स्थित धीर्मुनिरुच्यते** अर्थात् स्थित प्रज्ञ हो जाने पर योगी राग, भय और क्रोध से दूर हो जाते हैं यह रागादि विकार उसे व्यथित नहीं करते। गीता में पाँचवे अध्याय में भी भगवान् कहते हैं—

'कामक्रोध वियुक्तानाम् यतीनाम् यत चेत—साम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्।।

अर्थात् जो एकाग्र चित्त योगी है, काम और क्रोध से परे है ऐसे आत्मज्ञानियों के लिये तो सर्वत्र ब्रह्म दर्शन सुलभ रहता है। सामान्य रूप से ब्रह्मा जी ने समस्त जीवों को, मानव को बहिर्मुखी बनाया है किन्तु जो आत्म दर्शन के पिपासु है जिन्होंने अपने मन सहित समस्त

इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बना लिया है ऐसे ही आत्मनिष्ठ साधकों को अपने ही अन्दर उस परम तत्व का दर्शन हो जाता है किन्तु जो आत्म तत्व के जिज्ञासु नही हैं वे अकृतात्मा हैं। ऐसे ही विमूढ़ लोग क्लेशों व दुःखों से घिरे रहते हैं।

अन्तर्जगत में प्रवेश पाने के लिये योगी सद्गुरु की आवश्यकता होती है। अनेक जन्मों के पुण्योदय हो जाने पर मनुष्य को सद्गुरु का सानिध्य प्राप्त होता है। सद्गुरु को पाकर प्रणिपात होकर अतिविनम्र रहकर गुरुदेव की सेवा करते हुये साधक आध्यात्म सम्बन्धी शंकाओं को गुरुदेव के सामने निवेदित करता है तो करुणावरुणालय गुरुदेव अपने शिष्य की शंकाओं का समाधान करते हैं और योग में स्थित करके समस्त शंकाओं का निराकरण कर देते हैं। तभी साधक के समस्त शुभाशुभ कर्म क्षय हो जाते हैं और साधक निर्मल चित्त होकर आत्मरामी बन जाता है। गुरुदेव शक्तिपात द्वारा साधक के छिपे व गुप्त शक्तियों को जागृत कर देते हैं। अपने यौगिक संकल्प एवं स्पर्श से प्राणों का शोधन कर शक्तियों से भर देते हैं। गुरुदेव की कृपा से ही मन और प्राण दिव्य शक्तियों के अधिष्ठान बन जाते हैं। यही सिद्धयोग का मार्ग कहलाता है। शक्तिपात भी अत्यन्त पुण्यशाली साधक पर ही हुआ करता है। गुरु भक्त ही शक्तियों को संभाल कर रख सकता है। गुरुदेव अपनी कृपा से शिष्य के तन-मन को पूर्ण चैतन्य बना दिया करते हैं। मूढ़ लोग ही विषय भोगों में फँसे रहते हैं बुद्धिमान लोग भोगों से दूर रहते हैं। गीता में अखिलात्मा भगवान् कृष्णचन्द्र जी महाराज कहते हैं–शब्द, स्पर्शादि विषयजन्य जो सुख हैं वे दुःख मूलक ही हैं। अतः नश्वर हैं बुद्धिमान लोग उनमें रमण नहीं करते हैं। (गीता 5/22)

महायोगी भर्तृहरि जी महाराज भी कहते हैं–**'भोगे रोग भयम्'** भोगों का परिणाम रोग है। मनुष्य भोगों को भोगते-भोगते नष्ट हो जाता है किन्तु भोगेच्छा कभी समाप्त नहीं होती। आग में घी डालने से आग और अधिक प्रज्ज्वलित होती है। परमात्मा ने प्रकृति को जीवों के भोग और मोक्ष प्रदान करने के लिये बनाया है। जो मोक्ष चाहते हैं वे मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों की क्षमताओं को योग साधना में लगाते हैं। **'चिदावसानो हि भोगः'** चित्त के अस्तित्व तक भोग का ही क्षेत्र रहता है। इसलिये आत्मलाभ की इच्छा वाले को चाहिये कि वह भोगों में सुख न ढूंढे। भगवान् ने गीता में कहा भी है–

'अनित्यमसुखं लोकं इमं प्राप्य भजास्वमाम्। (गीता 10/33)

अर्थात् हे अर्जुन! इस अनित्य और सुख रहित शरीर को पाकर तू मेरी आराधना कर, इसी में तेरा कल्याण है। जीव जिस सुख की खोज में है वह सुख तो भीतर ही है भगवान् कहते हैं–

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्
स ब्रह्म योग युक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।
(गीता 5/21)

अर्थात् बाहर के विषयों में आसक्ति रहित चित्त वाला योगी आत्म-स्थित जो ध्यानजनित सुख है उसे प्राप्त कर परमात्मा में एकीभाव को प्राप्त कर अक्षय आनन्द को प्राप्त करता है। वस्तुतः आत्म-दर्शन करना ही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। वेद में आया है शरीर के रहते-रहते इस जीवन में यदि उस परम तत्व को पा लिया है तब तो ठीक है यदि उसे नहीं जाना तो मनुष्य का बहुत-बहुत नुकसान है "महती विनष्टिः" महान नाश है।

अतः आत्म कल्याण कामी को सदा ही आत्म-दर्शन के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिए। समाधि में आरूढ़ रहना चाहिये जब तक उसे परम तत्व के दर्शन न हो जायें।

मुक्तात्मा

मन इन्द्रियों के संग सहित अथवा संग रहित विषयों में वृत्ति द्वारा प्रवृत्त हुआ करता है। एक विषय को छोड़कर दूसरे विषय को ग्रहण करता है इसी से चंचल बना रहता है। इस चंचलता में आत्मा जाना नहीं जाता। मन की चंचलता आत्मा को जानने नहीं देती। निर्विषय मन में आत्मा का बोध होता है। मन की वृत्तियाँ उत्पत्ति और नाश वाली हैं। वृत्ति के नाश को लय कहते हैं और वृत्ति की उत्पत्ति को विक्षेप कहते हैं। मन की एक वृत्ति का नाश होकर दूसरी वृत्ति उत्पन्न होने वाली है, इस नाश और उत्पत्ति के मध्य के समय को सन्धि के क्षण-समय में मन की कोई भी वृत्ति न होने से सामान्य ज्ञप्ति-ज्ञान प्रकाशता है, यह प्रत्येक का अपना स्वरूप है। जो मनुष्य इस सन्धि को आत्मा-स्वरूप जानकर टिकता है वह निसंदेह मुक्त है।

॥ ॐ श्री रामलाल प्रभवे नम:॥

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

—डॉ. विजय सिंह

अब दशम स्कन्ध के चौंतिसवें अध्याय में सुदर्शन और शंखचूड़ के उद्धार की कथा विस्तार से कही गयी है।

शिवरात्रि के अवसर पर नन्द बाबा और गोप समुदाय अम्बिकावन गये। सरस्वती नदी में स्नान किया और अम्बिका सहित भगवान पशुपति शंकर जी का नाना सामग्रियों द्वारा पूजन किया।

उस दिन नन्द आदि ने उपवास रखा था अत: केवल जल पीकर रात के समय सरस्वती के तट पर निश्चिन्तता से सो गये।

अम्बिका बन में एक विशाल अजगर जो बहुत भूखा था वह दैव संयोग उधर निकल आया और नन्द जी को पकड़ कर निगलने लगा। नन्द बाबा चिल्लाये—बेटा कृष्ण दौड़ो-दौड़ो यह अजगर मुझे निगल रहा है। विशाल अजगर को देख अन्य ग्वाले लाठियों से प्रहार करने लगे परन्तु उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ। इतने में भक्तवत्सल श्रीकृष्ण ने उस अजगर को अपने चरण से छू लिया। भगवान के स्पर्श मात्र से वह अजगर श्राप मुक्त होकर सर्वांग-सुन्दर बन गया। उसके शरीर से दिव्य ज्योति निकल रही थी। वह श्रीकृष्ण को प्रणाम कर हाथ जोड़े खड़ा रहा। भगवान ने उससे पूछा तुम कौन हो? और तुम अजगर योनि में कैसे आये?

वह दिव्य पुरुष बोला—भगवन! मैं सुदर्शन एक विद्याधर था। मैं सौन्दर्य एवं सम्पत्ति से मतवाला होकर विमान में चढ़कर यहाँ से वहाँ घूमता रहता था।

एक दिन अंगिरा गोत्र के कुछ कुरूप ऋषियों को देखकर उनकी हँसी उड़ायी। उन्होंने मुझे अजगर योनि में जाने का श्राप दिया। प्रभो! उन ऋषियों ने मेरे उपर अनुग्रह करने हेतु श्राप दिया था क्योंकि उसी के प्रभाव से आज चराचर के गुरु स्वयं आपने अपने चरण कमलों से मेरा स्पर्श किया, जिससे मेरे सारे अशुभ नष्ट हो गये।

शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तै: करुणात्मभि:।
यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभ:॥4॥

भक्तवत्सल! महायोगेश्वर पुरुषोत्तम! मैं आपके शरण में हूँ। इन्द्रादि समस्त लोकेश्वरों के परमेश्वर। स्वयं प्रकाश परमात्मन अब मुझे अपने लोक जाने की आज्ञा दीजिये। भगवान की आज्ञा से वह अपने लोक को गया।

प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन् महापुरुष सत्पते।

अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर।।6।।

(अ. 34 स्क. 10 पूर्वार्ध)

ब्रजवासियों ने श्रीकृष्ण का यह अद्‌भुत प्रभाव देख बड़े विस्मित हुये। वे सभी उनका गुणगान करते हुये तीर्थाटन से ब्रज लौट आये।

परीक्षित्! एक दिन की बात है, जब श्रीकृष्ण एवं बलराम जी रात्रि के समय वन में गोपियों के साथ विहार कर रहे थे। गोपियाँ प्रेमानन्द में पगी–ललित स्वर में प्रभु के गुणानुवाद का गायन कर रही थीं। प्रति उत्तर में भगवान श्रीकृष्ण और बलराम जी ने एक ही साथ मिलकर राग अलापा। उनके गान को सुनकर गोपियाँ मोहित हो गयीं उन्हें अपने शरीर का भान नहीं रहा।

उसी समय कुबेर का दूत शंखचूड़ नामक यक्ष वहाँ आया और बेखट उन गोपियों का हरण करके उत्तर की ओर भाग चला। गोपियाँ हाय कृष्ण, हाय राम कहकर रोती जा रही थीं।

डरो मत–डरो मत कहते हुये दोनों भाई उसी दिशा में दौड़े। उन्हें देख कर यक्ष घबरा उठा और गोपियों को वहीं छोड़ स्वयं भाग खड़ा हुआ। तब स्त्रियों की रक्षा हेतु बलराम जी वहीं खड़े रहे, परन्तु भगवान कृष्ण उसका पीछा करके उस दुष्ट के सिर पर एक घूसा जमाया, वह दुष्ट वहीं ढेर हो गया। तब उसके सिर की चूड़ामणि निकाल ली और उसे आकर बड़े भाई बलराम जी को दे दिया।

भक्ति–योग की साधना करने वाले के लिये दसम् स्कन्ध का पैंतिसवाँ अध्याय "युगल गीत" बड़ा उत्प्रेरक है। महारास के पश्चात् गोपियाँ सहज सिद्ध हो गयी थीं। वे एक क्षण भी श्रीकृष्ण–चिन्तन विमुख नहीं रहती थीं। उनका मन श्रीकृष्ण चिन्तन में विभोर रहता और वाणी से लीलाओं का गान करती रहती। गोपियाँ आपस में श्रीकृष्ण के रूप माधुर्य एवं उनके ऐश्वर्य की ही चर्चा में रत रहतीं।

यशोदा जी से कहतीं–नन्दरानी। तुम्हारे कुँवर कृष्ण ग्वाल बालों के साथ खेल–खेलने में बड़े निपुण हैं। बाँसुरी बजाना किसी से सीखा नहीं। अपने ही आप अनेक राग–रागिनियाँ उन्होंने निकाल लीं। जब वे अपने लाल–लाल अधरों पर बाँसुरी रखकर ऋषभ, निषाद आदि स्वरों की अनेक जातियाँ बजाने लगते हैं, उस समय वंशी की मोहनी तान सुनकर ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र आदि देवता–जो सर्वज्ञ हैं–वे मोहित हो जाते हैं। उनका चित्त वंशीध्वनि में ही तल्लीन हो जाता है, उनका सिर झुक जाता है और वे सुध–बुध खोकर तन्मय हो जाते हैं–

विविधगोपचरणेषु विदग्धो
वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षा:।
तव सुत: सति यदाधरबिम्बे
दत्तवेणुरनयत् स्वरजाती:।।14।।
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशा:
शक्रशर्वपरमेष्ठि पुरोगा:।

कवय आनतकन्धरचित्ताः

कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः।।5।।

भावयोगमय गोपियों की दिनचर्या का दिग्दर्शन यहाँ इस अध्याय में होता है।

दशम स्कंध के छत्तीसवें अध्याय में, अरिष्टासुर उद्धार तथा कंस का श्री अक्रूर जी को ब्रज में भेजने की कथा कही गयी है।

अरिष्टासुर नामक दैत्य भयंकर डील–डौल तथा भयानक सींग वाला, गर्जना करता, खेत, घरों की दिवाल तोड़ता ब्रज में उस समय घुस आया जब सब ओर श्रीकृष्ण के निमित्त आनन्दोत्सव की धूम मची हुई थी।

गोकुल को भयभीत देख भगवान श्रीकृष्ण ने सबको आश्वस्त करते हुये बोले "डरने की कोई बात नहीं" और वृषासुर दुष्टात्मा दुष्टों का घमण्ड चूर–चूर करने वाला यह मैं हूँ।

इस ललकार से अत्यन्त क्रोधित हो वह द्रुतगति से श्रीकृष्ण की ओर झपटा। श्रीकृष्ण ने उसके दोनों नुकीले सींग पकड़ कर उसे पीछे ठेलते–ठेलते गिरा दिया। पैरों तले दबाकर, लात मारकर उसे मार डाला। देवताओं ने फूल बरसाकर अभिनन्दन किया। गोप–गोपियों के मन आनन्द से भर गये।

इधर लीला कौतकी श्री नारद जी अरिष्टासुर वध की सूचना देने कंस के सामने प्रकट हुये तथा कहा–कंस! जो कन्या तुम्हारे हाथ से छूटकर आकाश में चली गयी थी, वह तो यशोदा की पुत्री थी। श्रीकृष्ण एवं बलराम देवकी एवं रोहणी के गर्भ से उत्पन्न हुये हैं, वे ही तुम्हारे सारे अनुचरों का वधकर्ता है। कंस ने क्रोध में भरकर पुनः देवकी एवं वसुदेव जी को कैद में डाल दिया। उसने केशी दैत्य को बुलाकर कहा –ब्रज में जाकर मेरा शत्रु श्रीकृष्ण–बलराम को मार डालो। इधर कंस ने एक चाल रचा, वह था, श्रीकृष्ण–बलराम को मथुरा आमंत्रित कर अपने बलिष्ठ मुष्टिक, चाणूर, शल आदि पहलवानों से लड़वाकर मार डालने का। उसने कुलिया पीड़ हाथी के महावत को बुलाकर कहा तुम इन ब्रज से आने वाले कृष्ण–बलराम को हाथी के पदतल से कुचल कर मार डालना। सच तो यह था कि नारद जी जो स्वयं भगवान के मन हैं अब कंस वध की तैयारी करा गये।

वह श्रेष्ठ यदुवंशी श्री अक्रूर–जी को बुलवाकर बोला–अक्रूर जी आप मेरे आदरणीय हैं, आप उदार एवं दानी हैं मेरा एक कार्य सम्पादित करें। आप नन्दराय के ब्रज जाइये। मेरा यह रथ लेकर जाइये तथा वसुदेव के दो पुत्रों को लेकर आइये। नन्द तथा अन्य गोपों को भी मेरी ओर से बड़ी–बड़ी भेंट ले जाइये। उसने अपनी योजना श्री अक्रूर जी को बतला दिया।

अक्रूर जी ने उत्तम शास्त्रोपदेश से कंस को समझाया परन्तु नहीं मानने पर उन्होंने कहा ठीक है, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

चित्तनिरोध के उपाय

श्री वैद्य रामधन शर्मा शास्त्री

किसी भाई का प्रश्न है कि चित्त बड़ा चंचल है और प्रमादी है, इसे रोकना बड़ा कठिन है। यद्यपि शास्त्रकारों ने इसके निरोध के अनेक उपाय बताये हैं। उन उपायों को पढ़ने–सुनने और समझने की चेष्टा भी की जाती है एवं उन बतलाये मार्गों के अनुसार साधना करने का यत्किंचित प्रयत्न भी किया जाता है, मन फिर भी स्थिर नहीं होता। अतः इसके निरोध का सुगम उपाय क्या है?

उत्तर यह है–दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति के लिए चित्त का निरोध आवश्यक है। श्रुति–स्मृति शास्त्रों में बतलाये हुए साधनों के अनुसार तत्पर होकर चेष्टा करने से इनका निरोध हो सकता है। किन्तु असल बात तो यह है कि साधक–गण इसके लिए यथेष्ट प्रयत्न तो करते नहीं, केवल सुगम उपाय पूछते रहते हैं। इसलिये प्रायः साधकों की यही शिकायत रहती है कि मन स्थिर नहीं होता। शास्त्रकारों ने चित्त–निरोध के जो अनेक उपाय बतलाये हैं, उनमें से किसी के लिए कोई सुगम उपाय पड़ता है तो किसी के लिए कोई। स्वभाव की विभिन्नता के लिए महर्षियों ने अधिकारी भेद से नाना विधि साधनों का उल्लेख किया है। अपनी साधारण बुद्धि के अनुसार इनमें से जो–जो साधन मैं सुगम समझता हूं उन्हें बतलाने का प्रयत्न करता हूं।

सर्वप्रथम ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि मन वश में हुए बिना उसका निरोध होना कठिन है और पवित्र हुए बिना मन का वश में होना कठिन है। इसलिए सर्वप्रथम मन को शुद्ध बनाना चाहिये। उसकी शुद्धि के लिए महात्माओं ने अथवा भगवान् ने अनेक साधन बतलाये हैं। महर्षि पतंजलि जी ने सुखी पुरुषों से मित्रता, दुखियों पर दया, पुण्यात्माओं को देखकर हर्ष और पापियों से उदासीनता रखना चित्त या मन की शुद्धि का उपाय बतलाया है और मन के प्रसन्न होने से ही शुद्धि होती है, तब चित्त निरोध होता है।

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्यविषयाणां भावना तश्चित्तप्रसादनम्।

–योग. द. 1/33

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अध्याय 5 श्लोक 11 में मन शुद्धि के लिए आसक्ति को त्याग कर कर्म करने की आज्ञा दी है। अन्य सभी–महात्माओं ने भी लगभग इसी प्रकार कहा है। सबका निचोड़ यही निकलता है कि सब ही के हित में रत रह कर निरभिमान एवं निस्वार्थ

भाव से सबकी आत्मा को सुख पहुंचाना ही अन्तःकरण की शुद्धि का उत्तम उपाय है। वहीं हरि के नाम का स्मरण एवं कीर्तन भी मनःशुद्धि का सुगम उपाय है–

हरिर्हरति पापानि,
दुष्ट चित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छापि संस्पृष्टो,
दहत्येव हि पावकः।।

–वृ. नारद. 1/11/100

बिना इच्छा के स्पर्श करने पर भी जिस प्रकार अग्नि निश्चय ही जला देती है, उसी प्रकार दुष्टचित्त वाले मनुष्यों द्वारा भी स्मरण किये हुए हरि पापों को हर लेते हैं। गीता में लिखा है–

अपि चेत्सुदुराचारो,
भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः,
सम्यग्व्यवसितो हि सः।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा,
शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि,
न मे भक्तः प्रणश्यति।।

–गीता 9/30–31

अर्थात् कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ निरन्तर मुझे भजता है, वह साधु ही माना जाने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है, इसलिये वह शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। उपर्युक्त साधनों से पापों का नाश हो जाने पर मन शुद्ध और स्वाधीन हो जाता है फिर एकाग्र और निरोध हो जाना तो अत्यन्त ही सहज है। इस प्रकार शुद्ध और स्वाधीन हुआ मन परमानंद प्राप्ति के योग्य बन जाता है। प्रथम यह समझ लेने की आवश्यकता है कि मन का स्वरूप क्या है? इस सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने अनेक बातें बतलायी हैं।

महर्षि पतंजलि जी ने भी कहा है–

प्रमाणविपर्य्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः। **–योग. द. 1/6**

अर्थात्–प्रमाण, विपर्यय (मिथ्या ज्ञान), विकल्प (कल्पना), निद्रा और स्मृति चित्त (मन) की ये पाँच वृत्तियाँ बतलायी हैं। इनके निरोध का नाम ही योग है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

किसी महात्मा ने चित्त की क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र और निरुद्ध ये पाँच अवस्थायें बतलायी हैं और किसी ने संकल्प को ही इसका स्वरूप कहा है।

अपने–अपने सिद्धान्तों के अनुसार सभी की मान्यता ठीक है। अतः सार रूप से यह कहा जा सकता है कि संकल्पों का आधार अर्थात् संकल्प जिसमें उत्पन्न होते हैं, उसका नाम मन है। संकल्पों का आधार होने के कारण भी मन संकल्प रूप भी कहा जा सकता है। अब विचारणीय विषय यह है कि संकल्पों का निरोध किस सहज उपाय से किया जा सकता है। किन्तु इससे भी पूर्व यह जान लेने की आवश्यकता है कि संकल्पों के बार–बार उठने से साधना के लिए रुचि न होने में प्रधान हेतु कौन से हैं? इनके साथ ही साधना–काल में उपस्थित होने वाले विघ्नों को भी समझ लेना नितान्त आवश्यक है।

विघ्नों के विषय में महर्षि पतंजलि जी इस प्रकार लिखते हैं–

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति–भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थित–त्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।

दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासाः विक्षेपसहभुवः। **–योग. 30/31**

रोग, अकर्मण्यता, संशय, प्रमाद (व्यर्थ चेष्टा), अवैराग्य आलस्य का भाव, भ्रम चित्त–भूमि की अप्राप्ति, चित्त का विशेष समय तक स्थिर न रहना यह नव चित्त के विक्षेप हैं। दुःख, क्षोभ, अंगों का फड़कना, श्वासों का आना–जाना यह सभी नव विक्षेपों के साथ रहते हैं। अन्य शास्त्रकारों का भी न्यूनाधिक रूप से प्रायः यही कहना है। इन सब विघ्नों में व्याधि, अकर्मण्यता, प्रमाद, आलस्य, आसक्ति, स्फुरण ये छः प्रधान हैं। और इनमें विशेष आलस्य और स्फुरण बाधक हैं। अन्तःकरण मे अनेक संकल्पों के उत्पन्न होने में पूर्वार्जित संचित एवं प्रारब्ध कर्मों का संस्कार तथा बुरी आदत और विषयों की आसक्ति तथा साधन की ओर रुचि न होने मे पूर्व कृत पाप कर्मों का समुदाय एवं संशय, भ्रम और अश्रद्धा ही प्रधान हेतु हैं।

आसक्ति के नाश के लिये इस संसार के अनित्य नाशवान और क्षण भंगुर सम्पूर्ण पदार्थों और विषय–भोगों में दोष और दुःखों का बार–बार विचार कर उन से वैराग्य एवं उनका यथोचित्त त्याग करना चाहिये। प्रारब्ध कर्म का क्षय तो प्रायः भोग से ही होता है। और संचित कर्मों का यानी सम्पूर्ण पापों का नाश निष्काम भाव से दुःखी मनुष्यों की सेवा तथा

ईश्वर नाम जप से होता है। बुरी आदत, संशय, भ्रम और अश्रद्धा के नाश के लिये सत्पुरुषों का संग सत् शास्त्रों का विचार ही विशेष लाभप्रद है।

मन निरोध के विषय में अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण जी से पूछा था अर्जुन की शंका को स्वीकार कर यही उपदेश दिया कि मन चंचल और अस्थिर है तथापि अभ्यास और वैराग्य से वह स्थिर हो सकता है।

महर्षि पतंजलि का भी यही कथन है–

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

अभ्यास और वैराग्य से मन का निरोध होता है। सांख्यकार महर्षि कपिलदेव ने भी अभ्यास और वैराग्य से चित्त का निरोध बतलाया है। अन्य शास्त्रकारों का भी यही सिद्धान्त है।

किसी भक्त ने कहा है–

मन फुरना से रहित कर,
जौने विधि से होय।
चहै भक्ति चहै योग से,
चहै ज्ञान से खोय।।

उपर्युक्त वचन से भी यह सिद्ध होता है कि अभ्यास और वैराग्य ही चित्तनिरोध के लिये उत्तम उपाय है। इसलिये विषयों से वैराग्य करके मन के निरोधार्थ कटिबद्ध होकर अभ्यास करना चाहिये। इस प्रसंग पर अभ्यास और वैराग्य का स्वरूप समझ लेने की आवश्यकता है। त्रिगुणात्मक संसार के विषय भोगों और समस्त पदार्थों में तृष्णा और आसक्ति के अभाव का नाम ही वैराग्य है। अभ्यास एक व्यापक शब्द है। उसकी व्याख्या विस्तृत है। यहाँ विस्तार न करके सारी बातें ही बतलायी जाती हैं। इस विषय में महर्षि पतंजलि जी का कहना है–

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।

–योग 1–13

अर्थात्–परमात्मा में स्थिति के लिये यत्न करने का नाम अभ्यास है।

स तु दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कारा सेवितो दृढ़ भूमिः। **–योग 1 – 14**

यह अभ्यास दीर्घ काल तक आदरपूर्वक किया हुआ दृढ़ भूमि (स्थिति) वाला होता है। भगवान श्रीकृष्णजी का भी यह कहना है।

यतो यतो निश्चरति
मनश्चंचलमस्थिरम्।

ततस्ततोनियम्यै

तदात्मनेव वशं नयेत्।। --गीता

स्थिर न रहने वाला चंचल मन जिस-जिस कारण से सांसारिक पदार्थों में विचरता है उससे रोककर बार-बार परमात्मा में ही निरोध करें। समस्त विघ्नों के नाश एवं मन की स्थिरता के लिए सबसे उत्तम और सहज उपाय ईश्वर के नाम का जप और उसके स्वरूप का ही चिन्तन है। महर्षि पतंजलि जी का यही कथन है।

ईश्वर प्रणिधानाद्वा। --योग 1 – 23

ईश्वर की भक्ति से ही चित्त की वृत्ति का निरोध होता है।

तस्य वाचकः प्रणवः।

तज्जपस्तदर्थ भावनम्।

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्त-

राया भावश्च।। --योग-1-27/28

अर्थात्--उस ईश्वर का नाम ओंकार है। उस ईश्वर के नाम का जप उसके स्वरूप का चिन्तन करना चाहिये उससे समस्त विघ्नों का अभाव और आत्मा का साक्षात्कार भी हो जाता है। गीता में श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन के प्रति कहते हैं--

अनन्य चेता सततं

यो मां स्मरति नित्यशः।

तस्याहं सुलभ पार्थ

नित्य युक्तस्य योगिनः।।

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्त से स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मुझे स्मरण करता है, मुझमें युक्त हुए योगी के लिए सुलभ हूँ। इसलिये ईश्वर के नाम का जप और स्वरूप का चिन्तन अवश्य करना चाहिये।

अभ्यास के विषय में और भी युक्तियाँ शास्त्रों में मिलती है। उनमें से किसी एक के अनुसार साधन करने पर मन स्थिर होना सम्भव है। उनमें से कुछ युक्तियाँ ये है।

मन जहाँ जाय वहाँ से हटाकर उसको अपने अधीन करके परमात्मा में लगाने की अपेक्षा करे। मन जहाँ जाय वहीं परमात्मा के स्वरूप का चिन्तन करना और भी सहज सुगम उपाय है। मन को काबू में करने के लिए इन युक्तियों को काम में लाने की चेष्टा करनी चाहिये। ईश्वर सब जगह व्यापक है ही, अपनी समझ के अनुसार श्रद्धा और प्रेम से उस परमेश्वर का सब जगह चिन्तन करने से चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है।

भगवान् शिव अथवा विष्णु की अथवा अपने इष्टदेव की उसकी मूर्ति या चित्र को सम्मुख रखकर श्रद्धा और प्रेम से भगवान के मुखारविन्द पर नेत्रों की वृत्ति को स्थिर–स्थापन करके अपने ऊपर भगवान् की अपार दया और प्रेम का अनुभव करता हुआ उस आनन्दमय परमेश्वर के मुख–कमल पर मन रूपी भँमर को स्थिर–स्थापन करने से भी चित्त की वृत्तियाँ एकाग्र होकर निरुद्ध हो सकती हैं।

प्रात:काल सूर्य के सम्मुख खड़े होकर नेत्र मूँद कर सूर्य की ओर देखने से एक महा प्रकाश–पुंज सर्वत्र समभाव से प्रतीत होता है. उसको लक्ष्य करके उससे हजारों गुना अधिक एक प्रकाश का पुंज आकाश की तरह सर्वत्र समान भाव से परिपूर्ण हो रहा है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है वही परमात्मा का तेजोमय स्वरूप है। इस प्रकार समझकर सम्पूर्ण संसार को भूलकर उस तेजोमय परमात्मा के स्वरूप में चित्त की वृत्तियाँ लगाने से भी चित्त स्थिर हो जाता है। ध्यान लगाने से भी चित्त में वैराग्य होकर चित्तवृत्तियों का निरोध हो सकता है। निरोध करने का भी एक सरल उपाय है।

महर्षि पतंजलिदेव ने भी कहा है–

वीतराग विषयं वा चित्तम्।

वीतराग पुरुषों के चिन्तन से चित्त स्थिर हो जाता है। हृदय–देश में एक सुषुम्ना नाम की नाड़ी है, उस नाड़ी में परमानन्द विराजमान है। गीता में लिखा है–

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टा:।

परमात्मा विज्ञानानन्द रूप है। इसलिए उस नाड़ी में चेतन और आनन्द की भावना करनी चाहिए। उस नाड़ी का शरीर की सम्पूर्ण नाड़ियों से सम्बन्ध है, इसलिये उसके बन्द हो जाने से सब नाड़ियाँ बन्द हो जाती हैं। उस नाड़ी की चाल साधारणतया एक–मिनट में 75 या 80 बार समझी जाती है। उसी चाल पर हमारे हाथों की और मस्तक की नाड़ियाँ टकराती हैं। इसकी प्रत्येक चाल के साथ ॐ का जप करते हुए विज्ञानानन्दघन परमात्मा की भावना उस नाड़ी में की जावे तो चित्त की वृत्तियाँ स्थिर होकर परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

यह साधन कुछ कठिन अवश्य है. परन्तु शब्द रहित जहाँ विशेष बाधा देने वाले शब्द न सुनाई दें, ऐसे एकान्त स्थान में एकाकी रह कर प्रयत्न किया जाये तो सिद्ध हो सकता है।

विशोका वा ज्योतिष्मति। **–योग–दर्शन 1–36**

शोक रहित प्रकाशमय चित्त की अवस्था विशेष भी स्थिर करती है। यह सुषुम्ना–नाड़ी में ध्यान लगाने से होती है।

जीवन का लक्ष्य

धर्माचार्य दण्डी स्वामी कोमलदेव आश्रम, तैय्यबपुर, कासगंज

हमने अपने जीवन में अनेकों सन्तों–शास्त्रविदों से सुना है कि यह मानव जीवन अनमोल है। सृष्टि के रचयिता परब्रह्मपरमात्मा ने सृष्टि की रचना करते समय अनेक योनियों, अनेक रंग–रूप–आकार और पृथक–पृथक गुणों–कर्मों व स्वभाव वाले जीवों से युक्त इस सृष्टि की रचना की है। सन्तों और शास्त्रों के अनुसार चौरासीलाख योनियों वाली इस सृष्टि में केवल मानव सृष्टि के प्राणियों को सर्वश्रेष्ठ–उत्तम–चेतन ज्ञानयुक्त–जाग्रत जीव बताया है, और अन्य तिरासी लाख निन्यानवे–हजार नौ सौ निन्यानवे योनि के जीवों को जड़योनि–भोगयोनि–अचेतन योनि का माना है। रामचरितमानस के रचयिता परमसंत तुलसीदास जी ने रामायण में ऐसा लिखा है–

चौपाई–साधन धाम मोक्षकर द्वारा।
बड़े भाग्य मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थन गावा।।

उपरोक्त चौपाई के अनुसार यह मानव शरीर जो देव दुर्लभ भी कहा जाता है ऐसा मानव शरीर परमात्मा की अहैतुकी परमकृपा का परिणाम है। उस ईश्वर जो जगतपिता–जगत का स्वामी, सृष्टि का रचयिता–पालनकर्ता है ने नरक गर्भ में जीवात्मा के द्वारा की गई करुण पुकार अथवा भगवान को संसार में जाकर भविष्य में सन्त शास्त्र मर्यादा का पालन करने के वादे के पश्चात् इस शर्त पर गर्भग्रह की कठिन यातना से मुक्ति दिलाई कि वह संसार में आने के बाद शास्त्र मर्यादा का पालन करे और भविष्य में कभी भी गर्भ की नरक यातना को न भोगना पड़े, इस उद्देश्य के लिए कर्म करे–साधन–साधना करे। बार–बार मृत्यु होना और बार–बार जन्म लेना, बार–बार नरक गर्भ में जाने के चक्र से बचने का उपाय करे–साधन करे।

परन्तु गर्भ से बाहर आते ही इस मायामय संसार की ममता–मोह–भोग और अज्ञानान्धकार की प्रदूषित पवन के स्पर्श होते ही, गर्भावस्था में परमात्मा को दिए अपने वादे–वचन को भूल जाता है। जिसके परिणाम संसार की झूठी माया–ममता–मोह–काम–क्रोध–अज्ञान रूपी शत्रुओं के चंगुल में फंस कर अपने मानव जीवन के परम लक्ष्य! **साधन धाम मोक्षकर**

द्वारा! के पथ से भटक जाता है, उसे इस नाशवान संसार के नाशवान पदार्थ–वस्तुएँ–रिश्ते नाते सत्य व सार्थक लगने लगते हैं और सत्य सनातन परमात्म शक्ति के पथ को त्याग झूठे–नास्तिक तथा चौरासी के चक्र में डालने वाले व्यसनों में सुख व आनन्द का अनुभव महसूस करने लग जाता है। संसार के नाशवान सुख व व्यसन जीव को पुन: जन्म–मृत्यु के असह्य पीड़ाजनक कष्ट की ओर धकेल देते हैं।

इस मानव शरीर का उद्देश्य जो सन्तों शास्त्रों ने बताया है कि **पुनः रपि जन्मं, पुनःरपि मरणं, जन्मं मरणं पुनरपिः पुनरपिः** के कुचक्र से मुक्ति का उपाय करना अथवा इस आत्मतत्त्व को उसके मूल परमात्म तत्व में समा जाने की क्रियाएँ करना।

आत्मा परमात्मा का अंश है और अपने मूल परमात्मा को पाने के लिए सर्वत्र व्याकुल–बेचैन होकर जगत जंजाल में फंसे जीव के साथ भटक रही है। बेचैन आत्मा की पुकार आवश्यकता की पूर्ति की चिन्ता से बेखबर यह प्राणी मुक्ति की युक्ति में प्रयोग होने वाले सभी गुण–पदार्थ–साधन–शक्तियाँ जो मानव को जन्म के समय ही परमात्मा ने इसी शरीर में प्रदान की हैं। जैसे मानव शरीर की रचना में अग्नि–जल–वायु–पृथ्वी–आकाश पांच तत्वों के एकीकरण से मानव शरीर की रचना की गई है, ठीक इसी प्रकार मानव शरीर के उद्देश्य की प्राप्ति सफलता के लिए समस्त साधन भी परमात्मा ने शरीर के साथ स्वयं दिए हैं। परन्तु अज्ञानान्धकार की काली घटाओं के कारण ज्ञान का प्रकाश धुंधला गया है। इस कारण जीवात्मा भटक रहा है।

परमात्मा ने मानव को विवेक नाम का एक विशेष यन्त्र देकर अन्य से श्रेष्ठ इसीलिए बनाया है कि ऐसी अवस्था में ईश्वर द्वारा दिए गए विवेक का प्रयोग करें। और ज्ञान रूप मुक्तिमार्ग को प्राप्त करने के लिए प्रकृति द्वारा बताए गए मार्ग संतों की संगति–संतों की सेवा और सतसंग रूपी सद्मार्ग को ग्रहण करें।

संतों के मन बसते रघुराई।।

सन्त भेष देखहि भगवन्ता।।

सन्त भगवान का रूप माने जाते हैं, जिन सन्तों ने संसार के समस्त सुखों–भौतिक पदार्थों–सम्बन्धों से स्वयं को हटाकर परमात्मा तत्व से जोड़ लिया है, जो परमात्म प्राप्ति के साधनों में समर्पित हैं, संलग्न हैं ऐसे सन्तों की शरण में जाकर उनके वचनों का पालन करना और उनके द्वारा की जाने वाली दैहिक क्रियाओं, योग–साधन–भजन–चिन्तन–स्मरण–ध्यानादि क्रियाओं को ग्रहण करना और उन गुरुजनों के अनुसार उनका पालन करना।

ऊपर की पंक्ति में जिन छ: क्रियाओं का वर्णन किया है उन छहों क्रियाओं को करने में

न कोई दाम खर्च होना है और न कोई हानि या कष्ट होता है। और न ही कहीं से कुछ लाना या खोजना पड़ता है। उक्त छओं क्रियायें इसी शरीर के द्वारा गुरु के द्वारा बताए गए ढंग–युक्ति–योजना–तरीके से करने पर "मुक्ति का मार्ग" खुलने लग जाता है।

ध्यान रहे! उक्त छः क्रियाओं को करने में बाधा उत्पन्न करने वाले छह शत्रु भी बीच–बीच में अपना प्रभाव दिखाकर क्रिया मार्ग से भटकाने के लिए अपना मायाजाल फैलाकर बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। कल्याणकामी साधक को इनके चंगुल में नहीं आना बल्कि गुरु आज्ञा–गुरु ज्ञान–गुरु के द्वारा की जाने वाली दैहिक क्रियाओं का श्रद्धा से पालन करना है। साधक के छह शत्रु बाधक हैं–काम–क्रोध–मद–लोभ–मोह–अहंकार। ये छहों शत्रु परमात्मा द्वारा प्रदत्त छह साधनों के करते समय बाधाएँ उत्पन्न कर पथ से भटकाने की कोशिश करेंगे हमें इनसे बचना होगा और इनसे बचने का उपाय है, गुरु के द्वारा बताई गई, योग क्रिया–साधना–जप–तप–स्मरण–चिन्तन–ध्यान।

इन क्रियाओं के पालन करने का ढंग भी निराला है, अद्भुत है, इनको अपनाने एवं करने में भी न कोई कष्ट है न खर्च है, न कहीं से कुछ लाना खोजना है। योगी पुरुषों ने बताया है कि यम–नियम–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान और समाधि। ये आठ क्रियायें ऐसी–सीधी–सरल तथा सदैव उपलब्ध शारीरिक अंगों–यंत्रों के द्वारा की जाने वाली क्रियाएँ है।

उक्त जिन आठ क्रियाओं का वर्णन किया है उनको कब–किस प्रकार–कैसे अपनाया जाये, इस विषय को अगले लेख में स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

।।शुभम्।।

जो जैसा करता है, वैसा ही फल भोगता है। जिनका चित्त परमेश्वर के परमानन्द का अनुभव करता है, उन्हें स्वप्न में भी किंचित मात्र क्लेश नहीं होता। वे परम गति को प्राप्त होते हैं।

–श्रुतिसार

सुर-दुर्लभ मानव जन्म

-दिनेश चन्द्र शर्मा, 9412671314

परमात्मा ने मनुष्य को संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनाया है। अनेक विशेषताएँ और विभूतियाँ मनुष्य को उपलब्ध है। ईश्वर की असीम कृपा से सुर दुर्लभ मानव शरीर प्राप्त हुआ है। गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज योग प्रचार कार्यक्रमों में अपने प्रवचनों में **''दुर्लभो मानुषो जन्मः''** पर प्रकाश डालते हुए मनुष्य जन्म की महत्ता का बोध कराते और योग के गूढ़ रहस्यों को सहज रूप से समझाते कि योग ही दिव्य-अनिवाशी जीवन है। इसलिए जीवन में योग को अपनाओ।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है कि भगवत् कृपा से मानव शरीर मिलता है-

नर तन सम नहि कवनेहुँ देही, जीव चराचर जांतत तेही।
कव हुँक करि करुना नर देही, देत ईश बिनु हेतु सनेही।
सरग नरक अपवर्ग निसेनी, ग्यान विराग भगति सुख देनी।

मनुष्य जन्म की सार्थकता भगवत् प्राप्ति में ही है। मानव शरीर की महिमा विचित्र है। कितनी शक्तियाँ इसके भीतर निहित हैं, इसका लोगों को पूर्णतया बोध नहीं होता और न उन शक्तियों को प्रकट करने का उनका ध्यान होता है। लोग ऐश-आराम से अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। अपने अन्दर छिपी अनन्त शक्तियों को विकसित करने का साधन करना नहीं चाहते।

लोगों का कैसा और किसके साथ संसर्ग होता है, इसी पर उनकी शक्तियों का विकास निर्भर करता है। गुण और दोष एक दूसरे के संसर्ग से होते हैं-**''संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति''**।

इस धरती में यद्यपि विभिन्न प्रकार के बीज छिपे हुए रहते हैं फिर भी प्रायः जमते वे बीज ही हैं जिन बीजों को लोग बोते हैं। ठीक यही दशा मानव शरीर की बताई गई है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने शरीर को क्षेत्र कहा है। क्षेत्र को सामान्य भाषा में खेत कहते हैं। खेत का मतलब यह है कि जो बीज उसमें लोग बोयेंगे, वही जमेगा और फल पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होंगे। इसके लिए जैसा खेत तैयार किया जायेगा, जैसा खाद-पानी दिया जायेगा, बीज भी उसी अनुपात में पुष्ट और प्रचुर मात्रा में फल देगा। यदि खेत अच्छी तरह तैयार नहीं किया गया है और उसमें उचित खाद-पानी आदि नहीं दिया गया है तो बीज की समुचित वृद्धि भी

न होगी। ठीक यही दशा शरीर की भी है। इस शरीर के साथ जैसी संगति, संसर्ग, सत्संग, कुसंग बनाया जायेगा उसका प्रतिफल भी वैसा ही होगा। जिन–जिन लोगों से या जिस प्रकार की विचारधारा से हम प्रभावित होते हैं उसी के अनुरूप हमारी अन्तर्निहित शक्तियों का विकास होता है।

खेत में कोई व्यक्ति घास नहीं बोता। देख–रेख और खाद–पानी के अभाव में जैसे घास–काँटे आदि आप से आप उत्पन्न हो जाते हैं। वही दशा शरीर की भी समझनी चाहिए। अच्छे बीज और फल के लिए जिस प्रकार अच्छी जुताई और खाद–पानी की आवश्यकता है। इसी प्रकार इस शरीर द्वारा उचित गुणों के विकास और प्रसार के लिए अच्छे संसर्ग–संगति सत्संग एवं अच्छी साधना की व्यवस्था को जो अपनाते हैं वे साधक कहलाते हैं। साधक सद्गुरुदेव के निर्देशन में साधना के द्वारा शरीर में अन्तर्निहित शक्तियों का प्रादुर्भाव कर सकते हैं।

जैसे खेत के विषय में पूरी जानकारी वाले व्यक्ति को कृषक या खेतिहर कहते हैं। वैसे ही इस शरीर रूपी क्षेत्र के पूरे जानकार को योगीराज श्री कृष्ण ने क्षेत्रज्ञ कहा है। इस शरीर रूपी क्षेत्र की महिमा की पूरी जानकारी को यथार्थ ज्ञान कहा है।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभि धीयते।
एतत् यः वेत्ति तम् प्राहुः क्षेत्रज्ञः इति तद्विदः।।
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोः ज्ञानं यत् यत् ज्ञानम् मतं मम।

(गीता अध्याय 13 श्लोक, 1. 2)

भगवान श्रीकृष्ण ने 12वें अध्याय में सगुण साकार उपासना का वर्णन किया है। 13वें अध्याय में निर्गुण निराकार की उपासना का वर्णन है। यह शरीर क्षेत्र है और इसकी विशेषताओं को समझने वाले को क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। यह क्षेत्रज्ञ यानि जीवात्मा भी परमात्मा का ही अंश है। क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ का ज्ञान अर्थात् प्रकृति और पुरुष को जानना तथा समझना यथार्थ ज्ञान है। ऐसा योग योगेश्वर श्री कृष्ण का निर्देश है।

प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध को समझ लेना सरल काम नहीं है। प्रथम यह विचार करना है कि यह जो शरीर है, वह नाशवान है और इसके अन्दर नित्य निवास करने वाली आत्मा अजर अमर है। इस आत्मा का न जन्म होता है और न मृत्यु अर्थात् इसका कभी नाश नहीं होता है। मनुष्य में जो जीवात्मा है वह नित्य है और परमात्मा भी नित्य है। इसीलिए हममें और परमात्मा में अन्तर कैसा? इस गूढ़ तत्व को समझने के लिए घड़े और आकाश की उपमा दी जाती है। बाहर का जो आकाश है वह वृहद आकार आकाश है और घड़े के अन्दर जो

आकाश का भाग है वह वृहद आकार आकाश से सम्बन्धित है। परमात्मा वृहद आकार आकाश के सदृश है और उसी का अंश यह जीवात्मा घट रूप शरीर में समाया हुआ है। भगवान ने अपनी लीला से इस जीवात्मा को ऐसा बंधन बांध दिया है जो जीवात्मा के लिए दुष्कर हो गया है। इसी लीला को कोई माया, कोई प्रकृति के नाम से पुकारते हैं, परमात्मा ने हमारे चारों ओर माया का ऐसा आवरण डाल रखा है कि जिससे निकल कर परमात्मा के निकट पहुँचना जीवात्मा के लिए कठिन होता है।

हमारा शरीर भी एक विचित्र देव मन्दिर है। जिसकी वास्तविक जानकारी योगियों को ही सम्भव है—

मन को मार गगन चढ़ि आई
मान सरोवर पैठि नहाई
त्रिकुटी महल में ठाकुर द्वारा
जिसके भीतर चकमक तारा
उजियारा है, उजियारा है
घर भीतर पंखा न्यारा है।

मनुष्य का मन बहुत चंचल है, न जाने कहाँ–कहाँ छलांग मारता है। उसको पता नहीं होता कि नाड़ियों द्वारा वायु का संचार हो रहा है, जो एक निराला पंखा है और इन सबके बीच भगवान का विश्राम स्थान है। जिसका बोध योग के द्वारा ही सुलभ है।

मनुष्य शरीर में चौदह मुख्य नाड़ियाँ है जो अपने स्थान पर रहकर अपना कार्य कर रही हैं। इनका शोधन योगी ही कर सकते हैं, जो अपने मन–मन्दिर को शुद्ध और पवित्र कर उसमें भगवान को आसीन रखते हैं। सुषुम्ना, पिंगला, ईड़ा, सरस्वती, पूषा, वरुणा, हस्ति–जिह्वा, यशस्विनी, अलम्बुदा, कुहु, विश्वोदरा, पयस्विनी, शंखिनी, गान्धारी, मुख्य नाड़ियाँ बताई गई हैं। इनमें तीन नाड़ियाँ सुषुम्ना, ईड़ा, पिंगला, सबसे प्रधान हैं। हर नाड़ी के अलग–अलग देवता हैं जो शरीर में इन नाड़ियों के साथ निवास करते हैं। योगी विशुद्ध मन से जो अपने शरीर में उस अन्तः प्रकाश स्वरूप शुद्ध परमात्मन तत्व का साक्षात्कार करता है वह सर्व समर्थ हो जाता है।

इसीलिए योग मार्ग पर चलना उत्तम है। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से कहा है **''तस्माद् योगी भवार्जुन''**। अर्जुन तुम योगी बनो। योगावतार प्रभु श्री रामलाल जी महाराज और सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का भी यही निर्देश है कि पवित्र योग मार्ग पर चलें।

आपका आसन

श्री विष्णुप्रसाद 'व्यास'

आनन्दघन परमात्मा की अंश–भूत आत्माओं ! बड़ी ऊँचाई पर है आपका आसन। बड़ा ही पवित्र, अनुपम और सुरम्य। इसकी रमणीयता अनूठी है, आकर्षण अद्वितीय और उपादेयता अनूठी है। जिसने भी अपने इस उत्कृष्ट आसन के सौन्दर्य को सुरक्षित रखा, वह नर से नारायण की पदवी को पा गया। एक यही आसन है जिस पर आसीन होकर आप निज–धाम का अवलोकन कर सकते हैं। इसी पर से ही आप चौदह भुवनों के ऐश्वर्यों का भलीभाँति अवलोकन कर सकते हैं। निर्गुण निराकार ब्रह्म के असीम आनन्द की अनुभूति इसी आसन पर की जा सकती है। श्रेय–मार्ग की सम्पूर्ण विभूतियाँ इस आपके ही आसन पर स्वतः खेला करती हैं। संसार की सत्यता का भान अपने आप ही हो जाता है। नित्य शुद्धः बुद्ध, मुक्त स्वभाव का बोध कराने वाला यह आपका आसन है। अमृत के सजस रूप में बहते हुए झरने यहाँ दृष्टिगोचर होते हैं। इस आसन पर बैठने के लिये सत्व, रज और तम इन तीन गुणों की सीमाओं को पार करना अत्यावश्यक है। शुभाशुभ कर्मों की गहरी घाटियों में अटका हुआ मनुष्य इस दुष्प्राप्य आसन को छूने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकता। ब्रह्मज्ञान के अखण्ड प्रकाश में विलीन होकर ब्रह्मनिष्ठ इस भद्रासन की गरिमा को जान सकता है।

यह आपका आसन आपके ही अन्दर आठोंयाम विद्यमान है। ब्रह्मदेव स्वयं उस पर अधिष्ठित हुए आपके आने की बाट जोह रहे हैं। इसी पर से ही चौदह लोकों को अमृत–धाराओं से आप्लावित करने वाली शाश्वत आनन्द की गंगा निरन्तर बहा करती है। फिर भी आश्चर्य है कि अनित्य संसार के विशाल उद्यान में विहार करने वाला मनुष्य उस सुधा–धारा की निन्दा नहीं सुन पाता, उसमें मज्जन करने की चाह तक नहीं जगाता। इसी आसन की ओर ही संकेत कर रहे हैं। श्रीमदभगवद्गीता के ये शब्द–

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन–
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति,
श्रुत्वाप्येन वेद न चैव कश्चित्॥

–गीता 2/29

उस आसन की ओर कोई तो बड़ी ही आश्चर्य भरी नजर से निहारने लगता है, कोई

उसकी गुणावलीका बखान करता–करता अघाता ही नहीं, कोई उसकी महिमा को चकित होकर सुनता है। किन्तु इतने प्रयत्न करने पर भी उस आसन के विषय में किसी को सम्पूर्ण जानकारी मिल नहीं पाई। कितने आश्चर्य की बात है यह ! किन्तु यह सत्य है कि यह पहचान भगवत्कृपा से प्राप्त होती है। सद्गुरु ही इसके रहस्य का पता देते हैं।

आप भी कहते होंगे कि किस प्रकार का अद्‌भुत होगा वह आसन ? आसन वह चाहे कैसा भी अनूठा हो, है तो वह आपका आपके लिए ही वह आरक्षित। केवल मानव काया में ही उस आसन पर आसीन हुआ जा सकता है, परन्तु ऐसे आसन तक पहुँचने के लिए सात ड्योढ़ियों को पार करना होगा। वे देहलियाँ कौन सी हैं? पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, छठा मन और सातवीं बुद्धि। ये ड्योढ़ियाँ कैसी हैं? इन ड्योढ़ियों पर कामदेव का उग्र पहरा लगा है। इस कन्दर्प राज (काम) से पहिले लोहा लेना होगा। उस पर पूर्ण विजय प्राप्त करके ही इस अपने आसन पर आप पदार्पण कर सकते हैं। अर्जुन को भगवान् स्वयं अपने मुख से इस सत्यता पर प्रकाश डालते हुए कथन करते हैं–

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिर–
स्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष,
ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ,
नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं,
ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।

–गीता 3/40–41

हे अर्जुन! इन्द्रियाँ मन और बुद्धि ये सब इस काम नामक दुर्दान्त शत्रु के वासस्थान (गढ़) कहे जाते हैं। यह काम इन मन, बुद्धि और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित (ढांपना) करके जीवात्मा को मोहित कर देता है। इसलिए हे अर्जुन! तू पहले इन्द्रियों को वश में करके इस ज्ञान–विज्ञान का नाश करने वाली महापापी काम का तू अवश्य बलपूर्वक वध कर दे।

आपके आसन तक पहुँचने का मार्ग ऊबड़–खाबड़ है। कितनी चक्करदार गलियों में से निकलना होता है। प्रबल वैरी कामदेव का उन मार्गों पर कड़ा पहरा लगा है। क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ईर्ष्या आदि उस महा सेनापति के शक्तिशाली सैनिक हैं, जो अपने

कर्त्तव्य–पालन में तत्पर हैं। इस प्रकार के बीहड़-मार्ग से गुजरने के लिए और इन प्रचण्ड शत्रुओं से लोहा लेने के लिए असीम बल–पराक्रम की आवश्यकता है।

कठोपनिषद् में भी इसी आशय का एक मन्त्र मिलता है–

श्रवणाऽपि बहुभिर्यो न लभ्यः,
शृण्वन्तोऽपि बहवो न विद्युः।
आश्चर्योवक्ता कुशलोस्य लब्धा,
आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।

–कठोप. वल्ली 1, अ. 2, मन्त्र 7

वह आपका आसन जिस पर परमात्मा स्वयं विराजमान हैं, बहुतों की चर्चा का विषय बना रहता है, परन्तु उसे पा लेना अति कठिन है। अनेकों ने उसकी महिमा को सुना, किन्तु पूरी जानकारी न पा सके, बड़ा ही आश्चर्य होता है। यदि कोई उस आत्मा का व्याख्यान करने लगे और जो भाग्यवश उस आत्मा का दर्शन कर ले, वह अत्यन्त निपुण समझा जायेगा। उसका यथार्थ ज्ञान रखने वाले पुरुष को देखकर ही लोग दांतों–तले उँगली दे लेते हैं। कठोपनिषद् के महर्षि कथन करते हैं कि उस सर्वोत्तम सिंहासन पर पहुँचने का अधिकारी वही होगा, जिसने सद्‌गुरुदेव जी के चरण–कमलों में बैठकर उनसे शिक्षा–दीक्षा ली होगी।

उस आसन का, उसके चारों ओर की परिस्थितियों का तथा उसके मार्ग में आने वाली अनन्त बाधाओं का वर्णन सहज भाव से चाहे किया जा सकता है और अपने बल, तेज और पौरुष की भी डींगें मारी जा सकती हैं, परन्तु यथार्थ रूप में उस सुदुर्लभ आसन पर प्रतिष्ठित हो सकना कितना दुष्कर कार्य है। उसका पूर्ण ज्ञान तो राही बनने से ही विदित होगा।

अपने आसन की ओर पग बढ़ाने से पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण के ये शब्द भी मनन करने योग्य हैं–

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो, बुद्धे परतस्तु सः।।

–गीता 3/42

इन इन्द्रियों को स्थूल शरीर से बलशाली कहा गया है। इन्द्रियों से मन को, मन से बुद्धि को और बुद्धि से प्रबल एवं सूक्ष्म वह आत्मा है।

उस देश में जाने के लिए एक–एक इन्द्रिय में एक–एक अक्षौहिणी सेना की शक्ति का भी यदि अनुमान लगाया जाये तो सात अक्षौहिणी सेनाओं से जूझने की अपार शक्ति आपको अपने में भरनी होगी। एक अक्षौहिणी का परिमाण इस प्रकार निश्चित किया गया है–एक

अक्षौहिणी में 21800 रथ, इतने ही हाथी, इससे तिगुने घोड़े और इससे पाँच गुने पैदल सिपाही होते हैं। कितनी विराट–वाहिनी से आपको टक्कर लेनी होगी, परन्तु इसमें मन तोड़ने की कोई बात नहीं। आपका आसन जहाँ इस प्रकार की अग्नि परीक्षा लेता है, वहाँ शाश्वत आनन्द, परमसुख और नित्य शान्ति के भण्डार भी तो आपको प्रदान करता है। इतने ऊँचे से ऊँचे शिखर पर पहुंचने के लिए शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि इन सभी को अत्यन्त निर्मल बनाना होगा। इसके लिए काया बलवती हो, अंग–अंग परिपुष्ट हो, प्रत्येक इन्द्रिय अपने–अपने धर्म के पालन में तत्पर रहती हो, मन राग–द्वेष से खाली हो, वह प्राणिमात्र से प्रेम ही प्रेम करता हो, किसी जीव के प्रति स्वप्न में भी अहित चिन्तन न किया करे। काम–क्रोधादि शत्रु अपनी शत्रुता को भूलकर विश्व के मंगल करने में लग जायें। बुद्धि में सात्विक भावनायें भरी हों, जो मुमुक्षु पुरुष बन्धन और मुक्ति भय और अभय को, कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य को भली प्रकार से जानता है, ऐसा पुरुष सात्विकी बुद्धि का धनी है।

अपने आसन पर अधिकारपूर्वक बैठने वाले परम सात्विक पुरुष में जिन गुणों का समावेश होना चाहिए, वे ये हैं–

अमिथ्या वचनं सत्यं,
स्वीकार प्रतिपालम्।
प्रिय वाक्यं गुरो–सेवा,
दृढ़ चैव व्रतं कृतम्।।
आस्तिक्यं साधुसंगश्च,
पितुर्मातुः प्रियङ्करेः।
शुचित्वं विविधञ्चैव,
वस्तु संचय एव च।।

–वृहद्पुराण, पूर्व खण्ड 1/47

झूठ न बोलना, स्वीकार किये हुए व्रत का पालन करना, प्रिय वचन बोलना, सद्गुरु की सेवा करना, नियमों को दृढ़ता से पालना, आस्तिकता, साधु–संग, माता–पिता की आज्ञा में रहना, बाहर और भीतर की शुद्धि, बुरे कर्मों के प्रति लज्जा का होना और पदार्थों का संग्रह करना।

किसी भी उच्च पदवी को प्राप्त करने के लिए उसके अनुरूप अर्हता एवं योग्यता भी होनी चाहिए। माना कि यह आपका अपना आसन है, परन्तु उस आसन से आपको इसलिये वंचित होना पड़ा, क्योंकि उस पर आसीन होने के पात्र आप नहीं थे। ब्रह्म–दर्शन कर लेना कोई

गुड़ियों का खेल नहीं। मन, वचन और कर्म से अत्यन्त पवित्र होना नितांत आवश्यक है। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति किसी भी अवस्था में मन मैला न होने पावे।

यह मार्ग त्याग और वैराग्य का है। इस पर चलने के लिए पूर्ण विवेक की आवश्यकता है। एक बात और भी, विवेक, त्याग और वैराग्य पाने के लिए परिपूर्व ब्रह्मनिष्ठ सन्त–सद्गुरुदेवजी की टेक का मिलना अनिवार्य है। यह मार्ग बड़ा 'झीना' है, अति सूक्ष्म है। जब तक इस दुर्गमपथ के जानकार पूर्ण इष्टदेव जी से मिलकर, उनके श्री–चरणों में बैठ कर इस रास्ते की भयंकरताओं का ज्ञान प्राप्त न कर लिया जायेगा, तब तक इन सातों ड्योढ़ियों को पार करना खतरे से खाली नहीं है। उन्हीं की दया–दृष्टि होती है, जिससे अज्ञान या अन्धकार तुरन्त मिट जाता है और भीतर ज्योति के झरने फूट पड़ते हैं। जिनके प्रकाश में अपने धाम के दर्शन हो जाते हैं।

किस प्रकार की जन्म–जन्म से प्रबुद्ध होकर आर्द्र हुई आत्माएँ अपने वर्तमान जन्म में मोक्ष–सिद्धि प्राप्त कर लेती हैं। इसका एक सुन्दर उदाहरण हमें बृहदारण्यकोपनिषद् के दूसरे अध्याय के चौथे ब्राह्मण में मिलता है। उसमें स्पष्टतया इस सच्चाई को समझाया गया है कि उस समय के ब्रह्मवादी महर्षि याज्ञवल्क्यजी ने किस प्रकार के मधुर सदुपदेश से ब्रह्मवादिनी, उच्च संस्कारिणी मैत्रेयीजी को आत्मा की अपरोक्षानुभूति करा दी, उसके ज्ञान–कपाट एकदम से खोल दिये और वह अपने आसन पर स्थित होकर अनन्त शान्ति में विलीन हो गई।

श्री याज्ञवलक्य–मैत्रेयी संवाद संक्षेप में इस प्रकार है–

''अरी मैत्रेयी! अब मैं इस गृहस्थाश्रम से ऊपर संन्यासाश्रम में जाने के लिये इच्छुक हूँ, इसलिये मैं तुम्हारी अनुमति लेना चाहता हूँ और साथ ही मेरी इच्छा है कि तुम्हारा और कात्यायनी का जो मेरे साथ पत्नी रूप में सम्बन्ध था, उसका अन्त करते हुए अपनी सारी सम्पत्ति का तुम दोनों में बँटवारा कर दूँ।'' ये शब्द याज्ञवल्क्य जी ने मैत्रेयी से कहे थे।

इस पर ब्रह्मज्ञान की उपासिका मैत्रेयी ने अपनी शंका प्रस्तुत करते हुए कहा–''भगवन्! मुझे आप इतना बतलाइये कि यदि समुद्रों से घिरी हुई सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से भरपूर पृथ्वी भी मेरी हो जाये तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी?''

श्री याज्ञवल्क्यजी ने बड़ी गम्भीरता से मैत्रेयी की शंका का समाधान करते हुए कहा–''नहीं, कदापि नहीं! तू सम्पूर्ण वसुन्धरा को पाकर भी अमर नहीं हो सकती। तेरा जीवन वैसा ही हो जायेगा जैसा कि किसी धन–धान्य सम्पन्न व्यक्ति का होता है। धनादि पदार्थों के संचय से अमृतत्व की प्राप्ति असम्भव है। **''नामृतत्वस्याशास्ति वित्तेन।''**

इस उत्तर को सुनकर मैत्रेयी क्षुब्ध–सी हो गई और उसने विनयपूर्वक कहा कि–''प्रभो! जिस धन–धान्य से मैं अमर नहीं हो सकती, उसे प्राप्त करके मैं क्या करूँगी? मुझे तो आप वह साधन बताइये, जिसके अनुष्ठान से मैं अमर पदवी को पा सकूँ।''

श्री याज्ञवल्क्यजी बोले–''मैं तेरे अनन्त हृदय को जान गया हूँ। तू वास्तव में ही उस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञान की अधिकारिणी है, जिसे कोई–कोई आत्मा उपलब्ध करना चाहती है, सो आओ, बैठो और उस तत्व का श्रवण करो जिसके सुनने और निदिध्यासन करने से तू ब्रह्ममयी हो जायेगी, तेरी सम्पूर्ण शंकायें मिट जायेंगी। मेरे एक–एक वचन को अपने अन्तःकरण की गहराई में उतार लेना, उससे तेरा परम कल्याण होगा।''

(उपवन के एक रमणीय कुंज में बैठकर श्री याज्ञवल्क्यजी ने मैत्रेयी को ये सारगर्भित वचन कहे–''अरी मैत्रेयी ! यह निश्चय है कि पति के प्रयोजन के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिए पति प्रिय होता है। स्त्री के प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिया नहीं होती, अपने ही प्रयोजन के लिये स्त्री प्रिया होती है। पुत्रों के प्रयोजन के लिये पुत्र प्रिय नहीं होते। अपने ही प्रयोजन के लिये पुत्र प्रिय होते हैं। धन के प्रयोजन के लिए धन प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिए धन प्रिय होता है। हे मैत्रेयी ! न ब्राह्मण के, न क्षत्रिय के, न लोक के, न देवों के, न भूतों के और न अन्य सभी के प्रयोजन के लिए ये सब प्रिय होते हैं। वे सभी अपने प्रयोजन के लिये ही प्रिय होते हैं।'' यह है सारतत्व, इस विश्व के प्रपंच का, इसे अन्तर्मन में दृढ़ कर ले।

भाव यह है कि महर्षिजी ब्रह्म की उपासिका पत्नी मैत्रेयी को यह मौलिक सिद्धान्त विस्पष्ट कर देना चाहते हैं कि ''सबसे प्रिय वस्तु आत्मा है। उसी की प्रीति सर्वोपरि है, उसके प्रेम से ही दूसरी सभी वस्तुएँ प्रिय लगती हैं। मुख्य प्रीति आत्मा की है, यह तू निश्चय जान और सब प्रीति गौण हैं, अवास्तविक हैं। संसार और सांसारिक पदार्थों से किया हुआ प्यार ऐसे ही मिथ्या है जैसे कि रस्सी में की हुई सर्प की भ्रान्ति–रज्जु सर्प नहीं बन जाती। अन्धकार होने से वह सर्प भासती है। ऐसे ही सभी सम्बन्ध भ्रममात्र हैं इनमें स्थायित्व नहीं, वे निराधार हैं। एक आत्मा ही सत्य है, नित्य है और शाश्वत है, उस करके ही इस संसार का अस्तित्व है, वस्तुतः यह जगत है नहीं।

अतः हे मैत्रेयी ! आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन और उसका निदिध्यासन सब हो जाने पर निश्चय ही इस सम्पूर्ण प्रपंच का परिपूर्ण बोध हो जाता है। सबमें आत्मभावना रखनी है। अणु–अणु में वही एक आत्मा प्रतिष्ठित है। यह धारणा मन में धारण कर जीवन–पथ पर पग बढ़ाती चल।''

तू निर्गुण ब्रह्म के धाम में विचरण करना चाहती है, इसलिए तुझे गुह्य अद्वैत ज्ञान का सार समझना अत्यावश्यक है।

हे मैत्रेयी ! यह सब कुछ आत्मा ही है। इसका कारण यह है कि सब कुछ आत्मा से ही उत्पन्न होता है, आत्मा में ही लीन होता है तथा स्थिति काल में अर्थात् वर्तमान दशा में भी आत्मा में ही यह जगत् स्थित है। मैंने सभी जिन्हें क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, लोक, देव, भूत और सब कुछ करके गिनाया है, आत्मा से अभिन्न नहीं है। सबका आत्मा वही परमात्मा ही है।

मैत्रेयी–ब्रह्मर्षि ! यह कैसे जाना जाये कि यह सब आत्मा ही है? स्थिति काल में उसकी भिन्नता स्पष्ट प्राप्त होती है।

ब्रह्मर्षि–हे मैत्रेयी ! किसी नक्कारे पर डण्डे से चोट की जाती है, उससे उत्पन्न होने वाली शब्दों की लहरें समस्त वायु–मण्डल में तैरने लगती हैं। उन शब्द लहरियों को यदि एक साथ ही ग्रहण करना हो तो उस दुन्दुभि अर्थात् नक्कारे को ही पकड़ लीजिये। उसके ग्रहण करने से सारे गुंजार करने वाले शब्द पकड़ में आ जायेंगे। उन शब्दों को जैसे अलग से नहीं ग्रहण किया जा सकता, ऐसे ही स्वप्न और जाग्रत अवस्थाओं को भी उस ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' प्रज्ञान अर्थात् ब्रह्म के ज्ञान की दशा से पृथक करके नहीं जाना जाता, इनका आधार वह मूल आत्मा है।

इसी प्रकार शंख और वीणा के बजाने पर उनके स्वरों को अलग से नहीं पकड़ा जा सकता। उन्हें यदि रोकना हो तो सीधे शंख और वीणा को ही थाम लो। उनके ग्रहण करने से सभी शब्द लहरियाँ शान्त हो जायेंगी। इसी प्रकार हर एक प्राणी जीवन–दशा में भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है।

हे मैत्रेयी! उस विज्ञानघन ब्रह्म से ही यह जगत् ऐसे सहज–भाव में उत्पन्न हुआ है, जैसे हमारी नासिका से आने–जाने वाला श्वास निःश्वास होता है, यह बिना किसी श्रम के स्वयंमेव चल रहा है। ऐसे ही चारों वेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद् आदि सभी विद्याएँ और जितना भी नाम रूपात्मक जगत है, यह सब कुछ ब्रह्मरूप ही है। जैसे अग्नि से भिन्न धुआं, चिनगारियाँ, ज्वालायें नहीं हैं। इनका आधार वह अग्नि ही है, इन सब में भी वही आग व्याप्त है। ऐसे ही सारे प्रपंच में ब्रह्म ओतप्रोत है, उससे रिक्त स्थान कोई भी नहीं।

अन्त भी तो सभी का वही ब्रह्म है। जिस प्रकार सब जल का प्रलय–स्थान सागर है, इसी प्रकार सब स्पर्शों का प्रलय–स्थान त्वचा है। गंधों का नासिका, रसों का जिह्वा, रूपों का चक्षु और समस्त शब्दों का प्रलय–स्थान कान है। समस्त संकल्पों की परि समाप्ति मन में होती है और तमाम विद्याओं का केन्द्र हृदय है। सब विसर्गों का वायु–मार्गों का चरण एकमात्र प्रलय–स्थान है। उसी प्रकार समस्त वेदों का परिहार वाणी में हो जाता है। ये इन्द्रियाँ

ही अपने–अपने विषयों के स्रोत हैं और ये ही उनका अन्त है।

जिस प्रकार जल में डाला हुआ नमक का डेला जल में ही लीन हो जाता है, उसे जल से अलग नहीं किया जा सकता। ऐसे ही प्रज्ञानघन ब्रह्म ही सर्वत्र रमा हुआ है। यह समस्त स्थूल प्रपंच उसी से ही व्याप्त है। जैसे समुद्र में जहाँ से भी जल लो वहीं वह नमकीन होगा। ऐसे ही जहाँ से भी संसार को छुओ वहाँ ब्रह्म का ही स्पर्श पहले होगा। मध्य में होगा और अन्त में भी होगा, उससे भिन्न तो किसी वस्तु का अस्तित्व है ही नहीं, यह है अद्वैत तत्व, इस पर गम्भीर विचार कर अपने ब्रह्मत्व की अनुभूति को प्राप्त कर ले।''

इस अद्वैत तत्व का पूर्ण ज्ञान बिना सन्त–पुरुषों की चरण–शरण ग्रहण किये कदापि नहीं हो सकता।

आप भी सन्त–पुरुषों की संगति में बैठकर ''अपने आसन की खोज कर लीजिये और जीवन–मुक्त हो जाइये।''

चित्त–एक महानतम् सम्पत्ति

मानव–जीवन में परमात्मा को पाने के लिए साधनरूप में अनेकानेक सम्पत्तियाँ हैं। 'सभी सम्पत्तियों में चित्त एक महानतम सम्पत्ति है, अनमोल है।' जगत में हमें सारी चीजें मिल सकती हैं, परन्तु चित्त यदि एक बार चला जाये तो फिर से महा कठिन है। चित्त गया सो गया, फिर से तुमको प्राप्त नहीं होगा। इसीलिये चित्त को मजबूत, दृढ़, निर्मल, शक्तिशाली, दीर्घकाल तक सत्य–स्फुरणयुक्त बनाने के लिए ही हमारी आर्य संस्कृति में उपासना बतलाई गई है। मन्त्रपाठ, स्तोत्रपाठ, ईश–चिन्तन जो भी कुछ तुम्हारी उपासना है, वह सब 'चित्त–पूजन' है।

चित्त की महान् कीमत है। चित्त को साधारण मत समझो। चिति या चित्प्रकाश की संकोचदशा चित्त है। प्रत्यभिज्ञाहृदयम् का एक सूत्र है–'चेत्यसंकोचिनी चित्तम्। उसके भाष्य में लिखा है–'न चित्तं नाम अन्यत् किंचित् अपि तु सैव भगवती तत्।' चित्त प्रत्यक्ष भगवती है। यानी भगवती चिति कुण्डलिनी है। चित्त के सहारे ही समष्टि जगत हुआ है। चित्त के सहारे ही व्यष्टि जगत में जीव–प्रपंच है। चित्त चितिशक्ति की एक स्फुरणा है। चित्प्रकाश रूप परमेश्वर अनन्त शक्ति के भण्डार हैं।

–स्वामी मुक्तानन्द

जीवनदाता से मिलाती है आत्मा

निज कर्मों का फल पाने के लिए,
योनि–योनि में भटकती है यह आत्मा।
कर्म फल भोगने के लिए ही,
कुत्ता–बन्दर–शूकर–कूकर बनाती है यह आत्मा।।
माता–पिता–भाई–बहन–पति–पत्नी,
के रूप में उन्हीं–उन्हीं को पाती है यह आत्मा।।
अपने पूर्वजन्म के कर्जों को चुकाने के लिए,
उन्हीं–उन्हीं को पाती है यह आत्मा।।
लेनें या देनें के लिए, किसी भी रूप में,
सेवक या स्वामी भी बनाती है आत्मा।।
बैल–बन्दर–गाय–घोड़ा बनकर,
पूर्वजन्म के कर्ज चुकाती है यह आत्मा।।
वर्तमान शरीर में किए शुभ–अशुभ कर्म,
फल लेकर प्रभू ढिंग जाती है यह आत्मा।।
अपने कर्मों के ही फल स्वरूप,
पुनि–पुनि गर्भ नरक में जाती है आत्मा।।
जप–तप–दान–सेवा–सुमिरन से,
जन्म–मरण के चक्र से बचाती है आत्मा।।
सुर–असुर–देव–दानव के रूप में,
जीव को जीवनदाता से मिलाती है आत्मा।।

।।शुभम।।

रचयिता एवं प्रेषक

धर्माचार्य दण्डीस्वामी कोमल देव आश्रम

परमाध्यक्ष

अद्वैत मानव कल्याण केन्द्र धर्मार्थ ट्रस्ट

तैयबपुर, पो. बिलराम, (कासगंज)

(उ.प्र.)

पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम्

(आयुर्वेदीय विधिविधान)

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

जिसके देह में वात, पित्त और कफ, ये दोष (Temperaments) अग्नि, रस-रक्त आदि धातुएँ और धातुओं की मलक्रिया ये सब सम हैं तथा जिसकी आत्मा, मन और इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, वही पुरुष स्वस्थ कहलाता है।

शरीरायासजननं कर्म व्यायाम उच्यते।
लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते।।

शरीर को श्रम उत्पन्न हो, ऐसी क्रिया को व्यायाम (कसरत) कहते हैं। व्यायाम करने से देह सब ओर से सुडौल बनती है। शरीर की सुदृढ़ता, कांति-वृद्धि, अवयवों की सुन्दरता, जठराग्नि की प्रदीप्तता, आलस्य का अभाव, प्रसन्नता, लघुता और मृदुता की प्राप्ति होती है। परिश्रम, थकान, प्यास, गर्मी, सर्दी आदि सहन करने की शक्ति बढ़ती है तथा परम आरोग्य की प्राप्ति होती है। स्थूलता कम करने के लिए व्यायाम के समान कोई भी साधन नहीं है। व्यायाम करने वाले को शत्रु का भय नहीं रहता, सहसा जरावस्था का आक्रमण नहीं होता और माँसपेशियाँ सुदृढ़ बनी रहती हैं। जैसे-सिंह के पास मृग आदि क्षुद्र पशु नहीं जा सकते, वैसे ही नियमपूर्वक व्यायाम करने से कोई भी व्याधि नहीं आ सकती। व्यायाम अवस्था, रूप और गुणों से हीन मनुष्यों को भी सुन्दर स्वरूप वाला बना देता है।

अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा।
दृष्टि-प्रसाद-पुष्ट्यायुः स्वप्नसुत्वक्त्वदार्ढ्यकृत्।।

शरीर पर तेल की मालिश करने को तैलाभ्यंग कहते हैं। जो मनुष्य नित्य या 2-4 दिन बाद तेल मालिश करते रहते हैं, उनकी दृष्टि विमल, रक्ताभिसरण क्रिया सम्यक्, देह सुदृढ़, शान्त निद्रा, त्वचा मुलायम और तेजस्वी तथा मन में प्रसन्नता बनी रहती है। कफ-वात का निरोध, धातुओं की पुष्टि और परिश्रम का शमन होता है। इसके अतिरिक्त जरावस्था आने पर देह में बल बना रहता है। मस्तिष्क, कर्णमूल और पादतल पर मर्दन करने पर मस्तिष्क और स्मरण-शक्ति को भी लाभ पहुँचता है।

मालिश न करते रहने से या इतर रोग आदि हेतुओं से जिस मनुष्य की त्वचा शुष्क; बालों की रूक्षता, खुजली चलना, वात–विकार, मैल बढ़ना आदि दोष हो गये हों, उनको तेल की मालिश करना अति हितकर है।

उद्वर्त्तनं कफहरं मेदसः प्रविलायतम्।
स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं परम्।।

स्नान से पहले उद्वर्त्तन (उबटन) लगाने से कफ और मेद का विलय होता है; अंग स्थिर और दृढ़ होते हैं; त्वचा तेजस्वी और मुलायम बनती है तथा शिराओं के मुख खुल जाते हैं। फिर पसीना नियमित रीति से निकलता रहता है; रक्ताभिसरण क्रिया बलवान बनती है और त्वचा की ऊष्मा उत्तेजित होती है।

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमूर्जाबलप्रदम्।
कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मजित्।।

नित्य–प्रति स्नान करने की महर्षियों ने आज्ञा की है। स्नान करने से मनोवृत्ति प्रसन्न होती है, अग्नि प्रदीप्त होती है। आयु, उत्साह, बल और अग्नि की वृद्धि होती है तथा खुजली, मैल, पसीना, परिश्रम, आलस्य, तृषा, दाह, त्वचा और रक्त–विकार नष्ट होते हैं। जो मनुष्य नित्य आँवलों के चूर्ण से शरीर को मलकर स्नान करता है, वह पूर्ण आयु भोगता है।

न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः।।

जो मनुष्य भोजन के पश्चात् विधिवत् मट्ठे का सेवन करता रहता है वह कदापि रोगी नहीं होता। तक्रसे नष्ट हुए रोगों की उत्पत्ति पुनः नहीं हो सकती। जैसे स्वर्ग में देवों के लिए अमृत सुखदायक है, वैसे ही इस भूमंडल पर मनुष्यों के लिए मट्ठा हितकारी है।

विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं,
पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वायु।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो,
बलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः।।

जो मनुष्य नित्य ब्रह्ममुहूर्त में उठकर नासापुट से जलपान करता है, वह बुद्धिमान होता है। उसकी दृष्टि गरुड़ के समान तेजस्वी होती है तथा वलीपलित रहित और सब रोगों से मुक्त होता है।

सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर

—श्री विद्यानन्द सरस्वती

पंचप्राणाः पंचज्ञानेन्द्रियाणि पंच सूक्ष्मभूतानि मनोबुद्धिरित्येतानि सूक्ष्म शरीरम्।

—अना. त. व. अध्याय 9, सूत्र 65

पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच सूक्ष्म भूत, मन और बुद्धि—इन सत्रह घटकों से युक्त सूक्ष्म शरीर है।

सर्ग के आदि में प्रत्येक आत्मा के साथ एक-एक सूक्ष्म शरीर सम्बद्ध हो जाता है। इस शरीर का परित्याग एक ही बार प्रलय होने पर अथवा तत्वज्ञान हो जाने पर किया जाता है। जीवात्मा का विविध योनियों में संसरण—सूक्ष्म भूतों से घटित सूक्ष्म शरीर के द्वारा होता है। जो मृत्यु के उपरान्त भी आत्मा को अवेष्ठित किये रहता है। जैसे बीज में वृक्ष रहता है वैसे ही सूक्ष्म शरीर में स्थूल शरीर के बीज रहते हैं। जन्म—जन्मान्तर के कर्मों में संस्कार क्षीण होकर, कर्मों का भोग न रहने से जब आत्मा जन्म—मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है तभी सूक्ष्म शरीर छूटता है। प्रलय की अवधि में भी आत्मा के साथ सूक्ष्म शरीर नहीं रहता, परन्तु सूक्ष्म शरीर का सहारा लिये बिना आत्मा स्थूल शरीर से काम नहीं ले सकता। इसलिए मुक्ति—काल के समाप्त होने अथवा प्रलयोपरान्त सवर्ग—काल में जब भी जीवात्मा शरीर ध ारण करता है, तभी पहले की तरह सूक्ष्म शरीर उसके साथ सम्बद्ध हो जाता है।

सूक्ष्म शरीर पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच सूक्ष्मभूत तथा मन और बुद्धि (अहंकार) इन सबकी सूक्ष्म—तत्वों का संश्लिष्ट शरीर है। इसमें ये तत्व अत्यन्त सूक्ष्म रूप में समाविष्ट रहते हैं। प्राण समस्त करणों (पांच ज्ञानेन्द्रिय के साथ पांच कर्मेन्द्रियों को मिला कर दस बाह्यकरण तथा मन एवं बुद्धि अंतःकरण) के वृत्तिमात्र है। सूक्ष्म शरीर के घटक अवयवों के रूप में प्राणों का यही अर्थ अपेक्षित है। पांच तन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) पांच सूक्ष्मभूत हैं। करण अनाश्रित नहीं रह सकते। अतः पाँच तन्मात्र उनके आश्रयभूत माने जाते हैं। सूक्ष्म शरीर स्थित ज्ञानेन्द्रियों से तात्पर्य स्थूल शरीर के दिखाई देने वाले चक्षु—श्रोत आदि से नहीं हैं; वरन् इनकी सूक्ष्म—शक्तियों से है। दिखाई देने वाली इन्द्रियाँ तो उनके गोलक मात्र हैं, जो ज्ञानेन्द्रियों की अंतर्निहित सूक्ष्म शक्ति से प्रेरित होकर ही क्रियाशील होते हैं। इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति स्थूल भूतों से पूर्व पंच—तन्मात्राओं के साथ—साथ होती है।

सूक्ष्म शरीर कर्मों का अधिष्ठान है, जिसमें संस्कार भौतिक रूप में संचित रहते हैं। इन

संस्कारों के अनुरूप वृत्तियाँ बनती हैं और वृत्तियों के अनुसार मनुष्य कर्म में प्रवृत्त होता है। अन्नमय आदि कोशों का बीजमय रूप भी सूक्ष्म शरीर में सन्निहित रहता है। सूक्ष्म शरीर को माध्यम बनाये बिना अभौतिक आत्मा भौतिक शरीर से काम नहीं ले सकता, जब आत्मा द्वारा सूक्ष्म शरीर में विचार–तरंग उठती है तभी स्थूल शरीर में क्रिया होती है।

सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत करणों के व्यापार के कारण ही यह प्रतीत होती है कि इन सबके पीछे एक चेतन सत्ता है। इसलिए सूक्ष्म शरीर को ही लिंग शरीर भी कहा जाता है। वस्तुतः जब इन करणों की प्रधानता को दृष्टि में रखकर निर्देश किया जाता है तभी उसे इस नाम से व्यवहृत किया जाता है।

तीसरे शरीर–कारण शरीर को स्पष्ट करते हैं–

प्रकृतिरूपत्वात् सर्वव्यापकं कारण शरीरम्।

कारण शरीर प्रकृति रूप होने से विभु है।

सूक्ष्म शरीर के 17 घटकों में 12 करण आधेय अथवा आश्रित हैं और पाँच सूक्ष्मभूत तथा तन्मात्रा आधारभूत तत्व हैं। कारण शरीर का अर्थ है प्रकृति, जिससे सभी पदार्थों का निर्माण हुआ है। आधारभूत प्रकृति के ये तन्मात्र सूक्ष्म शरीर की रचना में उपादान कारण होने से उसकी रचना के लिए मूल प्रकृति रूप है। इसीलिए कारण शरीर को प्रकृति रूप कहा जाता है। प्रकृति रूप होने से कारण शरीर को विभु कहा जाता है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि कारण शरीर व्यक्तिरूप से सर्वत्र व्याप्त है।

स्थूल शरीर की रचना में जीवात्माओं का सहयोग रहता है। अतः प्रत्येक जाति के शरीर में समानता रहने पर भी अवयव भेद के कारण उन शरीरों को एक दूसरे से भिन्न पहचाना जा सकता है। परन्तु सूक्ष्म तथा कारण शरीर ईश्वरीय रचना होने के कारण व्यक्तिरूप से भेद होने पर भी रचना की दृष्टि से समान हैं। इस समानता के कारण ही सब जीवों के कारण शरीर को 'एक' कह दिया जाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि कारण शरीर व्यक्ति रूप से सब जीवों का एक ही होता है। व्यवहार में इन्द्रिय, मन, बुद्धि, आदि के आधार पर जो भेद देखने में आता है उसका कारण इन्द्रियादि के गोलक हैं न कि स्वतः इन्द्रियों की रचना अथवा उनकी अन्तर्हित सूक्ष्मशक्ति।

सुषुप्ति अथवा गाढ़ निद्रा में भी सूक्ष्म शरीर का व्यापार भी बन्द हो जाता है। उस अवस्था में कारण शरीर ही रहता है। सुषुप्ति में किसी भी प्रकार के सुख–दुःख, राग–द्वेष आदि का अनुभव नहीं होता। इस समानता के आधार पर ही कारण शरीर और आनन्दमय कोश को परस्पर संतुलित किया जाता है।

जादूगर सम्राट शंकर

(जादू कला सम्मोहन व दृष्टि बन्ध)

संसार में जादू को एक आश्चर्य के रूप में देखा जाता है। यह कला प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है। हमारे देश में भी कई **जादूगर** है जो कला से देश–विदेश में इस कला का परचम फैला रहे हैं उन्हीं में से एक नाम है जादूगर शंकर। इनका जन्म हरियाणा प्रान्त के सिरसा जिला में एलनाबाद में अग्रवाल परिवार में हुआ है। बचपन में ही देव कुमार के जादूगरी को देखकर जादू के प्रति आकृष्ट रहे शंकर ने घरेलू बाधाओं के बावजूद मशहूर जादूगर बी. एन. सरकार से इस कला में निपुणता पाई और इस कला का प्रदर्शन करने लगे और सफल जादूगर के रूप में प्रसिद्ध हो गये। जादू की कला के साथ–साथ इन्होंने सौभाग्य से योग साधना में भी प्रवेश किया। योगिराज श्री मुल्खराज जी महाराज के शिष्य स्वामी देवीदयाल जी महाराज से ध्यान योग की दीक्षा प्राप्त की और महाप्रभुजी रामलाल जी महाराज के अनन्य शिष्य बन गये।

अपनी इस प्राचीन कला को दुनिया में फैला रहे हैं। ये बताते हैं कि 35,000 प्रदर्शन (Show) दिखा चुके हैं। इनमें से करीब 27,000 शो से प्राप्त धन को ये धार्मिक कार्यों में, आपदा के सहायता कार्यों में लगा चुके हैं।

इनका प्रयास है कि इस कला का अधिक से अधिक प्रचार हो। नये साधक इस कला को सीखें व प्रचार करें। ये मानते हैं कि जादू का शो स्वस्थ मनोरंजन का साधन है। देश के बड़े–बड़े हस्तियों को यह अपनी प्रतिभा को दिखा चुके हैं। अलग–अलग करतबों के माध्यम से ये कभी पेड़ लगाने की प्रेरणा देते हैं कभी पानी बचाने का संदेश देते हैं। दहेज प्रथा आदि सामाजिक बुराइयों का भी खंडन करते हैं। देश भक्ति का नारा देकर तिरंगा फहराते हैं।

आप कई बार श्री सिद्धगुफा सवाई धाम के पवित्र दर्शन कर चुके हैं। और यहाँ की पवित्र रज का सेवन करते हैं। अभी 28 जून को इनका आगमन हुआ। पावन तीर्थ का दर्शन करके धन्य हुये।

श्री गुरु पूर्णिमा एवं रुद्र महायज्ञ धूमधाम से सम्पन्न

प्रतिवर्ष की भाँति गुरुपूर्णिमा व व्यास पूजा का महोत्सव बड़े ही धूमधाम से पारम्परिक ढंग से सम्पन्न हुआ। आश्रम में 10 हजार व्यक्तियों ने गुरुदेव का पूजन किया और भण्डारा प्रसाद प्राप्त किया। 16 जुलाई को ही चन्द्र ग्रहण रात्रि डेढ़ बजे से साढ़े चार बजे तक रहा। चन्द्रग्रहण के समय जाप एवं ध्यान पूजा का बड़ा ही महत्त्व है। प्रभु नाम संकीर्तन, भजन एवं दान देने की प्रथा प्राचीनकाल से ही है।

18 जुलाई को श्री रुद्र महायज्ञ प्रारम्भ हो गया जो 28 जुलाई तक चलता रहा। 25 वेद पाठी ब्राह्मणों के द्वारा रुद्री का पाठ होता रहा साथ में भक्तों ने बारी–बारी सोमवार को अपने हाथों से दूध आदि पवित्र वस्तुयें अर्पित की। वेदाचार्य डॉ. बैकुण्ठ नाथ जी के आचार्यत्व में 25 वेद पाठियों ने पाठ किया। यह कार्यक्रम श्रावस मास में प्रतिवर्ष कृष्णपक्ष की द्वितीया को प्रारम्भ होता है जो 11 दिन तक चलता है। 28 जुलाई को विशाल भण्डारे के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। अनुष्ठान में ढाई सौ–तीन सौ साधकों/व्यक्तियों ने आश्रम में निवास करते हुये जाप एवं ध्यानाभ्यास किया। श्री गुरुदेव जी इन दिनों में जाप, ध्यान पर विशेष बल दिया करते थे। वैसे भी संन्यासी व अन्य साधु भी चतुर्मास करते हैं जिसमें एक ही स्थान पर रहकर योग–साधना व उपासना की जाती है।

इस संसार में आये हो तो अब उठो, जल्दी करो और उन उदार प्रभु की शरण में जाओ। यह देह तो देवताओं की है, धन सारा कुबेर का है, इसमें मनुष्य का क्या है? देने–दिलाने वाला, ले जाने–लिवा ले जाने वाला तो कोई और ही है। इसका यहाँ क्या धरा है; रे मूरख! क्यों नाशवान् के पीछे भगवान् की ओर पीठ फेरता है?

योग-आसन

पादहस्तासन

विधि– समभाव से सीधे खड़े हो जायें व अपने दोनों हाथों को पीठ की ओर से घुमाकर आगे की ओर नीचे को झुकाते लायें व धीरे–धीरे अपने दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठे पकड़ लीजिये, किन्तु पैर यत्किंचित भी झुकने न पायें। पीठ झुककर गोलाकार बन गई हो व शिर दोनों हाथों के बीच आ गया हो। इसी को पादहस्तासन कहते हैं। निरन्तर के अभ्यासी लोग इसे खड़े होकर करते हैं।

कितना अच्छा होता

कितना अच्छा होता यदि आप विश्वास कर सकते कि भगवान किसी न किसी रूप में हम सबके सन्निकट रहते हैं। स्वस्थ अवस्था की अपेक्षा रोग में तो और भी विशेष रूप से वे हमारे पास उपस्थित रहते हैं। भगवान के अतिरिक्त आप किसी दूसरे चिकित्सक पर भरोसा न करें। क्योंकि मैं समझता हूं, आपके रोग का इलाज उन्होंने अपने ही हाथ में ले रक्खा है। भगवान में पूर्ण विश्वास कीजिए और देखिए कि इससे आपके स्वास्थ्य पर कितना अच्छा प्रभाव पड़ता है। भगवान को छोड़कर केवल औषध आदि में विश्वास रखने से तो सुधार की अपेक्षा हानि ही होती है।

रोग को दूर करने के जितने भी उपाय आप करते हैं, उन सबकी सफलता भी तो भगवान की इच्छा पर निर्भर करती है। भगवान स्वयं जब हमारे लिए दु:ख का विधान रचते हैं तो फिर उनको छोड़कर उसे दूर करने की और किस की सामर्थ्य है। सचमुच हमारे अन्त:करण के मल को दूर करने के लिए ही भगवान् हमें शारीरिक रोग प्रदान करते हैं। शरीर और अन्त:करण के रोगों का नाश करने वाले एकमात्र भगवानरूपी वैद्य की शरण कर सुख–शान्ति लाभ करना चाहिए।

– सन्त लारेन्स

●●●

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20

AUGUST 2019

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

☐☐☐☐☐☐

ईश मायया

वमोहितोऽयं जन ईश मायया, त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्।
सुखाय दु:खप्रभवेषु सज्जते, गृहेषु योषित् पुरुषश्च वंचित:।।

हे प्रभो ! जगत् के सभी प्राणी आप की माया से अत्यन्त मोहित हो रहे हैं। वे आप से विमुख होकर अनर्थ में ही फसे रहते हैं और आप का भजन नहीं करते। वे सुख के लिए घर–गृहस्थी के उन झंझटों में फँस जाते हैं, जो सारे दुखों के मूल स्रोत हैं। इस तरह स्त्री और पुरुष सभी ठगे जा रहे हैं।

संस्थापक:– योगयोगेश्वर आनन्दश्री ... जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. ... शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2002/14566
संपादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) ... शर्मा